



आचार्य अमृतचन्द्र कृत आत्मख्याति संस्कृत टीका सहित
श्रीमद् भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत

समयसार

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल कृत
गाथाओं और कलशों के हिन्दी पद्यानुवाद सहित
ज्ञायकभावप्रबोधिनी
हिन्दी टीका

प्रकाशक :

श्री कल्याणमल राजमल पाटनी सिद्ध चेतना ट्रस्ट, कोलकाता

एवं

पण्डित टोडरमल सर्वोदय ट्रस्ट

ए-4, बापूनगर, जयपुर-15 (राज.)

फोन : 0141-2707458, 2705581 फैक्स : 2704127

सैंतालीस शक्तियाँ

नन्वनेकांतमयस्यापि किमर्थमत्रात्मनो ज्ञानमात्रतया व्यपदेशः ? लक्षणप्रसिद्धया लक्ष्यप्रसिद्ध-
चर्थम्। आत्मनो हि ज्ञानं लक्षणं, तदसाधारणगुणत्वात्। तेन ज्ञानप्रसिद्धया तल्लक्ष्यस्यात्मनः
प्रसिद्धिः।

ननु किमनया लक्षणप्रसिद्धया, लक्ष्यमेव प्रसाधनीयम्। नाप्रसिद्धलक्षणस्य लक्ष्यप्रसिद्धिः,
प्रसिद्धलक्षणस्यैव तत्प्रसिद्धेः।

ननु किं तल्लक्ष्यं यज्ज्ञानप्रसिद्धया ततो भिन्नं प्रसिध्यति ? न ज्ञानाद्भिन्नं लक्ष्यं, ज्ञानात्मनोर्द्र-
व्यत्वेनाभेदात्।

तर्हि किं कृतो लक्ष्यलक्षणविभागः ?

मंगलाचरण

(दोहा)

अनंत शक्तियाँ उल्लसित, यद्यपि आतमराम।

ज्ञानमात्र के ज्ञान को, सैंतालीस बखान॥

इसके बाद आत्मख्याति में प्रश्नोत्तर के माध्यम से ज्ञानमात्र आत्मा का जो अनेकान्तात्मक
स्वरूप स्पष्ट किया गया है; वह इसप्रकार है -

“प्रश्न : अनेकान्तात्मक होने पर भी यहाँ आत्मा को ज्ञानमात्र क्यों कहा गया है; क्योंकि
ज्ञानमात्र कहने से तो ज्ञान को छोड़कर अन्य धर्मों-गुणों का निषेध समझा जाता है।

उत्तर : लक्षण की प्रसिद्धि के द्वारा लक्ष्य की प्रसिद्धि-सिद्धि करने के लिए यहाँ आत्मा को
ज्ञानमात्र कहा जा रहा है। ज्ञान आत्मा का लक्षण है; क्योंकि ज्ञान आत्मा का असाधारण गुण
है। आत्मा से भिन्न पुद्गलादि द्रव्यों में ज्ञान नहीं पाया जाता है। इसलिए ज्ञानलक्षण की
प्रसिद्धि से ज्ञान के लक्ष्यभूत आत्मद्रव्य की सिद्धि होती है, प्रसिद्धि होती है।

प्रश्न : इस ज्ञानलक्षण की प्रसिद्धि से क्या प्रयोजन है, क्या लाभ है ? मात्र लक्ष्य ही
प्रसिद्धि करने योग्य है, लक्ष्यभूत आत्मा की प्रसिद्धि करना ही उपयोगी है; क्योंकि आत्मा का
कल्याण तो आत्मा के जानने से होगा।

उत्तर : जिसे लक्षण अप्रसिद्ध हो; उसे लक्ष्य की प्रसिद्धि नहीं हो सकती। जिसे लक्षण
प्रसिद्ध होता है; उसे ही लक्ष्य की प्रसिद्धि होती है। यही कारण है कि पहले लक्षण को समझाते
हैं, तदुपरान्त लक्षण द्वारा लक्ष्य को समझावेंगे।

प्रश्न : ज्ञान से भिन्न ऐसा कौन-सा लक्ष्य है कि जो ज्ञान की प्रसिद्धि द्वारा प्रसिद्ध किया
जाता है ?

उत्तर : ज्ञान से भिन्न कोई लक्ष्य नहीं है; क्योंकि ज्ञान और आत्मा द्रव्य की अपेक्षा से
अभिन्न ही हैं।

प्रश्न : यदि ऐसी बात है तो फिर लक्षण और लक्ष्य का विभाग किसलिए किया गया है ?

प्रसिद्धप्रसाध्यमानत्वात् कृतः। प्रसिद्धं हि ज्ञानं, ज्ञानमात्रस्य स्वसंवेदनसिद्धत्वात्; तेन प्रसिद्धेन प्रसाध्यमानस्तदविनाभूतानंतधर्मसमुदायमूर्तिरात्मा। ततो ज्ञानमात्राचलितनिखातया दृष्ट्या क्रमाक्रमप्रवृत्तं तदविनाभूतं अनंतधर्मजातं यद्यावल्लक्ष्यते तत्तावत्समस्तमेवैकः खल्वात्मा। एतदर्थमेवात्रास्य ज्ञानमात्रतया व्यपदेशः।

ननु क्रमाक्रमप्रवृत्तानंतधर्ममयस्यात्मनः कथं ज्ञानमात्रत्वम् ?

परस्परव्यतिरिक्तानंतधर्मसमुदायपरिणतैकज्ञप्तिमात्रभावरूपेण स्वयमेव भवनात्। अत एवास्य ज्ञानमात्रैकभावांतःपातिन्योऽनंताः शक्तयः उत्प्लवन्ते।

उत्तर : प्रसिद्धत्व और प्रसाध्यमानत्व के कारण लक्षण और लक्ष्य का विभाग किया गया है। ज्ञान प्रसिद्ध है; क्योंकि ज्ञानमात्र के स्वसंवेदन से सिद्धपना है।

तात्पर्य यह है कि ज्ञान सभी प्राणियों को स्वसंवेदनरूप अनुभव में आता है। इस प्रसिद्ध ज्ञान लक्षण से उसके साथ अविनाभावीरूप से रहनेवाला अनंत धर्मों के समूहरूप आत्मा प्रसाध्यमान है।

इसलिए ज्ञानमात्र में अचलित स्थापित दृष्टि के द्वारा कुछ क्रम और अक्रमरूप से प्रवर्तमान एवं उस ज्ञान के साथ अविनाभावीरूप से रहनेवाला अनंतधर्मों के समुदायरूप जो भी लक्षित होता है, पहिचाना जाता है; वह सब वास्तविक आत्मा है। यही कारण है कि यहाँ आत्मा को ज्ञानमात्र कहा गया है।

प्रश्न : अरे भाई ! जिस आत्मा में क्रम और अक्रम से प्रवर्तमान अनंतधर्म हैं; उस आत्मा को ज्ञानमात्र कैसे कहा जा सकता है ? उसमें ज्ञानमात्रता किसप्रकार घटित होती है ?

उत्तर : परस्पर भिन्न अनंत धर्मों के समुदायरूप से परिणत एक ज्ञप्तिमात्रभावरूप स्वयं होने से यह भगवान आत्मा ज्ञानमात्रभावरूप है। यही कारण है कि उसमें ज्ञानमात्रभाव की अन्तः-पातिनी अनंत शक्तियाँ उछलती हैं।

तात्पर्य यह है कि आत्मा के अनंत धर्मों में परस्पर लक्षणभेद होने पर भी प्रदेशभेद नहीं है। आत्मा के एक परिणाम में सभी गुणों का परिणमन रहता है। यही कारण है कि आत्मा के एक ज्ञानमात्रभाव में अनंत शक्तियाँ उछलती हैं, परिणमित होती हैं।”

उक्त सम्पूर्ण कथन का सार यह है कि इस भगवान आत्मा में अनंत गुण हैं, अनंत धर्म हैं, अनंत शक्तियाँ हैं, अनंत स्वभाव हैं। यद्यपि यह भगवान आत्मा इन सबका अखण्ड पिण्ड है; तथापि उसे यहाँ ज्ञानमात्र कहा जा रहा है; क्योंकि स्वपरप्रकाशक ज्ञान आत्मा का लक्षण है। ज्ञानलक्षण से जो लक्ष्यभूत आत्मा लक्षित किया जाता है, पहिचाना जाता है, जाना जाता है; वह आत्मा ज्ञानमात्र कहे जाने पर भी अनंत गुणों का अखण्ड पिण्ड है, परस्पर विरोधी प्रतीत होनेवाले अनंत धर्मयुगलों का अखण्ड पिण्ड है, अनंत स्वभावों का स्वभाववान है और उछलती हुई अनंत शक्तियों का संग्रहालय है।

यहाँ आत्मा को जानने का काम भी ज्ञान करता है और वह आत्मा ज्ञानलक्षण से ही जाना-पहिचाना जाता है। तात्पर्य यह है कि ज्ञानलक्षण से लक्षित आत्मा ज्ञानपर्याय में जानने में आता है। लक्षण भी ज्ञान और उस लक्षण से आत्मा की पहिचान भी ज्ञान ही करता है।

अरे भाई ! परिणमित ज्ञान आत्मा का लक्षण है और ज्ञान परिणमन ही आत्मा को जानता है।

प्रश्न : जब आत्मा में अनन्त गुण हैं तो उसे ज्ञानमात्र क्यों कहा ? क्या ज्ञानमात्र के समान आत्मा को सुखमात्र भी कहा जा सकता है ?

उत्तर : नहीं; क्योंकि ज्ञान आत्मा का लक्षण है और लक्षण से ही लक्ष्य की प्राप्ति होती है। आत्मा को ज्ञानमात्र कहने का एकमात्र यही कारण है।

‘ज्ञानमात्र’ पद के प्रयोग के संदर्भ में दो बातें विशेष ध्यान देने योग्य हैं —

१. पहली बात तो यह कि ‘ज्ञानमात्र’ पद से ज्ञान के साथ अविनाभावी रूप से रहनेवाले गुणों का निषेध इष्ट नहीं है; अपितु पर और विकारी भावों का निषेध ही इष्ट है।

२. दूसरी बात यह है कि अनंत गुणों का अखण्ड पिण्ड होने के आधार पर आत्मा को सुखमात्र, वीर्यमात्र आदि न कहकर ज्ञानमात्र इसलिए कहा गया है कि ज्ञान आत्मा का अव्याप्ति, अतिव्याप्ति और असंभव — इन तीनों दोषों से रहित निर्दोष लक्षण है; आत्मा की पहिचान का चिह्न है।

यहाँ एक प्रश्न सहज ही उपस्थित होता है कि यह भगवान आत्मा अनंत शक्तियों का संग्रहालय है; इसमें अनन्त शक्तियाँ उछलती हैं; तो वे अनन्त शक्तियाँ कौन-कौन सी हैं ?

अरे भाई ! क्या अनन्त को भी गिनाया जा सकता है ?

न सही अनन्त, पर कुछ तो बताइये न !

इसी प्रश्न के उत्तर में आगे ४७ शक्तियों की चर्चा की गई है; जो इसप्रकार है—

१. जीवत्वशक्ति २. चितिशक्ति ३. दृशिशक्ति ४. ज्ञानशक्ति ५. सुखशक्ति ६. वीर्यशक्ति ७. प्रभुत्वशक्ति ८. विभुत्वशक्ति ९. सर्वदर्शित्वशक्ति १०. सर्वज्ञत्वशक्ति ११. स्वच्छत्वशक्ति १२. प्रकाशशक्ति १३. असंकुचित-विकासत्वशक्ति १४. अकार्यकारणत्वशक्ति १५. परिणम्य-परिणामकत्वशक्ति १६. त्यागोपादानशून्यत्वशक्ति १७. अगुरुलघुत्वशक्ति १८. उत्पाद-व्यय-ध्रुवत्वशक्ति १९. परिणामशक्ति २०. अमूर्तत्वशक्ति २१. अकर्तृत्वशक्ति २२. अभोक्तृत्वशक्ति २३. निष्क्रियत्वशक्ति २४. नियतप्रदेशत्वशक्ति २५. स्वधर्मव्यापकत्वशक्ति २६. साधारण-असाधारणसाधारणासाधारण-धर्मत्वशक्ति २७. अनन्तधर्मत्वशक्ति २८. विरुद्धधर्मत्वशक्ति २९. तत्त्वशक्ति ३०. अतत्त्वशक्ति ३१. एकत्वशक्ति ३२. अनेकत्वशक्ति ३३. भावशक्ति ३४. अभावशक्ति ३५. भाव-अभावशक्ति ३६. अभाव-भावशक्ति ३७. भाव-भावशक्ति ३८. अभाव-अभावशक्ति ३९. भावशक्ति ४०. क्रियाशक्ति ४१. कर्मशक्ति ४२. कर्तृत्वशक्ति ४३. करणशक्ति ४४. सम्प्रदानशक्ति ४५. अपादानशक्ति ४६. अधिकरणशक्ति ४७. संबंधशक्ति।

यद्यपि प्रत्येक शक्ति का स्वतंत्ररूप से अनुशीलन अपेक्षित है; तथापि कुछ ऐसे तथ्य हैं, जो सभी शक्तियों पर समानरूप से घटित होते हैं; इसकारण उनका स्पष्टीकरण आरंभ में ही अपेक्षित है। उक्त तथ्यों के जान लेने से सभी शक्तियों को समझने में सुविधा रहेगी।

सबसे पहली बात तो यह है कि सभी शक्तियाँ पारिणामिकभावरूप हैं। औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक और औदयिक भावों में कर्म का उपशम, क्षय, क्षयोपशम और उदय निमित्त होता है; किन्तु पारिणामिकभाव में कर्म का सद्भाव या अभाव कुछ भी निमित्त नहीं है। जीव की इन शक्तियों में भी कर्म का सद्भाव या अभाव कुछ भी निमित्त नहीं है; इसकारण ये सभी शक्तियाँ पारिणामिकभावरूप ही हैं।

दूसरी बात यह है कि इन शक्तियों के प्रकरण में जिस भगवान आत्मा की बात चल रही है; उस भगवान आत्मा में आत्मद्रव्य के साथ-साथ उसमें विद्यमान अनंत गुण और उनका निर्मल परिणमन शामिल है। ध्यान रहे, निर्मल परिणमन (पर्यायें) तो शामिल है, पर विकारी परिणमन शामिल नहीं है।

यद्यपि सभी शक्तियाँ पारिणामिकभावरूप ही हैं; तथापि यहाँ उछलती हुई शक्तियों की बात कही गई है; इसकारण यहाँ निर्मलपर्याय को भी शामिल करके बात हो रही है। उछलने का आशय मात्र परिणमन नहीं; अपितु निर्मल परिणमन है। शक्तियाँ पारिणामिकभावरूप हैं और उनका उछलना अर्थात् निर्मल परिणमन औपशमिक और क्षायिकभावरूप है तथा सम्यग्दृष्टि के क्षयोपशमभावरूप भी है।

ध्यान रहे, औपशमिक और क्षायिकभाव तो सम्यग्दृष्टियों के ही होते हैं; किन्तु क्षयोपशमभाव सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि अर्थात् ज्ञानी और अज्ञानी दोनों में पाया जाता है। यही कारण है कि यहाँ औपशमिक, क्षायिक और सम्यग्दृष्टि के क्षायोपशमिक भावों को निर्मल परिणमन कहा गया है।

उक्त भावों रूप परिणमित होना ही शक्तियों का उछलना है।

इसप्रकार यह सुनिश्चित हुआ कि शक्तियाँ मूलतः तो पारिणामिकभाव रूप ही हैं, पर उनका परिणमन ज्ञानियों के औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिकभावरूप है।

यहाँ एक प्रश्न संभव है कि जब निर्मल परिणमन को उछलती हुई शक्तियों में शामिल कर लिया तो फिर विकारी परिणमन को भी शामिल कर लेना चाहिए; क्योंकि वह विकारी परिणमन भी तो आखिर उसी का है और ज्ञानियों के भी होता ही है।

यद्यपि विकारी परिणमन भी उसी का है और वह ज्ञानियों के भी होता है; तथापि वह शक्तिरूप नहीं, कमजोरीरूप है। क्या कमजोरी को भी शक्तियों में शामिल किया जा सकता है?

यद्यपि अज्ञानियों को भूल से और ज्ञानियों को कमजोरी के कारण रागादि पाये जाते हैं; तथापि उन्हें उछलना तो नहीं कहा जा सकता, उल्लसित होना तो नहीं कहा जा सकता।

यही कारण है कि विकारी परिणमन को उछलती हुई शक्तियों में शामिल नहीं किया गया है।

तीसरी बात यह है कि इन शक्तियों में परस्पर प्रदेशभेद नहीं होने पर भी भावभेद है, लक्षणभेद है। यद्यपि एक शक्ति दूसरी शक्तिरूप नहीं है; तथापि एक शक्ति में दूसरी शक्ति का रूप अवश्य है; जिसके कारण वे सभी शक्तियाँ परस्परानुबिद्ध हैं।

आत्मद्रव्यहेतुभूतचैतन्यमात्रभावधारणलक्षणा जीवत्वशक्तिः ।

प्रश्न : 'एक शक्ति दूसरी शक्तिरूप नहीं है; फिर भी एक शक्ति का रूप दूसरी शक्तियों में है' — इसका भाव ख्याल में नहीं आया। इसे जरा विस्तार से स्पष्ट कीजिए।

उत्तर : विस्तार से स्पष्टीकरण तो इन शक्तियों के विशेष अनुशीलन में यथास्थान होगा; किन्तु संक्षेप में आशय यह है कि यदि एक शक्ति दूसरी शक्तिरूप हो तो फिर दोनों एक ही हो जायेंगी, उनमें परस्पर प्रदेशभेद तो है ही नहीं, भावभेद भी नहीं रहेगा।

इसीप्रकार यदि एक शक्ति का रूप दूसरी शक्तियों में, उनकी निर्मल पर्यायों में तथा उनके आधारभूत द्रव्य में भी न मानें तो वस्तु का स्वरूप ही नहीं बनेगा।

जीवत्वशक्ति का रूप यदि अन्य शक्तियों में न हो; उनकी निर्मल पर्यायों में न हो तथा उनके आधारभूत द्रव्य में भी न हो तो फिर शेष शक्तियाँ, उनकी निर्मल पर्यायें व आत्मद्रव्य अजीव हो जायेंगे। इसीप्रकार उनमें चितिशक्ति का रूप नहीं मानने पर आत्मद्रव्य की शक्तियाँ, उनकी निर्मल पर्यायें व उनका आधारभूत द्रव्य सभी जड़ हो जायेंगे; दृशि और ज्ञानशक्ति के रूप से इनकार करने पर सभी ज्ञान-दर्शन से रहित अचेतन हो जायेंगे। यहाँ तक कि प्रमेयत्वशक्ति के रूप को अस्वीकार करने पर सभी अप्रमेय हो जाने से जानने में ही नहीं आयेंगे।

इसीप्रकार सभी शक्तियों के संदर्भ में घटित किया जा सकता है।

आत्मा की अनंत शक्तियों में परस्पर प्रत्येक शक्ति का रूप अन्य शक्तियों में होने से सभी शक्तियाँ, उनकी निर्मल पर्यायें और उनका अभेद-अखण्ड पिण्ड भगवान् आत्मा जीव है, चेतन है, ज्ञान-दर्शनमय है, प्रमेय है, त्यागोपादानशून्य है। इसप्रकार प्रत्येक शक्ति, उनकी निर्मल पर्यायें और उनका अभेद-अखण्ड आत्मा अनंत शक्तिसंपन्न है, अनंत शक्तियों का संग्रहालय है और अनंत गुणों का गोदाम है।

अब प्रत्येक शक्ति का विवेचन प्रसंगप्राप्त है; जो इसप्रकार है —

१. जीवत्वशक्ति

अब आचार्य अमृतचन्द्र जीवत्वशक्ति के बारे में लिखते हैं, जिसका हिन्दी अनुवाद इसप्रकार है—
आत्मद्रव्य के हेतुभूत चैतन्यभाव को धारण करना है लक्षण जिसका, वह जीवत्वशक्ति है।

इस जीवत्वशक्ति के बीज समयसार की दूसरी गाथा में विद्यमान हैं। यह तो सर्वविदित ही है कि जीव का लक्षण चेतना है। चेतना ही जीव के भावप्राण हैं और उसके कारण ही इस जीव नामक पदार्थ का जीवन है। पंचास्तिकाय में निश्चय से जीव के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि जो जीता था, जीता है और जियेगा; वही जीव है।

तात्पर्य यह है कि यह जीव अपने जीवन के लिए परपदार्थों पर निर्भर नहीं है। इसमें चैतन्यभाव को धारण करनेवाली जीवत्वशक्ति है, जीवनशक्ति है; इसके कारण ही यह सदा जीवित रहा है अर्थात् अबतक जीवित रहा है, अभी जीवित है और भविष्य में भी जीवित रहेगा।

अजडत्वात्मिका चितिशक्तिः। अनाकारोपयोगमयी दृशिशक्तिः, साकारोपयोगमयी ज्ञानशक्तिः।

ध्यान रहे, इस जीवत्वशक्ति के कारण ही आत्मवस्तु का नाम जीव पड़ा है। यह जीव न तो आहार-पानी से जीता है और न आयुर्म के उदय से ही जीता है; इसके जीवन का आधार तो जीवत्वशक्ति है।

सांसारिक अवस्था में देह के संयोगरूप जीवन में भी आहार-पानी बहिरंग निमित्त और आयुर्म का उदय अन्तरंग निमित्त है; उपादान तो जीव की पर्यायगत योग्यता ही है।

इस जीव को मरणभय ही सर्वाधिक परेशान करता है; इसलिए आचार्यदेव ने सबसे पहले जीवत्वशक्ति की चर्चा करके इसके मरणभय को दूर करने का सफल प्रयास किया है।

इसप्रकार जीवत्वशक्ति की चर्चा कर अब चितिशक्ति की चर्चा करते हैं—

२. चितिशक्ति

चितिशक्ति का स्वरूप आत्मख्याति में इसप्रकार स्पष्ट किया गया है — अजडत्वं अर्थात् जडरूप नहीं होना, चेतनरूप होना है लक्षण जिसका, उसे चितिशक्ति कहते हैं।

जीवत्वशक्ति से सम्पन्न आत्मा में चिति नामक एक ऐसी भी शक्ति है, जिसके कारण यह आत्मा जडरूप नहीं है या जडरूप नहीं होता। यही कारण है कि इस चितिशक्ति को अजडत्वात्मिका कहा है, अजडरूप कहा है।

यह भगवान् आत्मा जीवत्वशक्ति के कारण जीव है और चितिशक्ति के कारण अजीव नहीं है, जड नहीं है। चितिशक्ति यह बताती है कि तू देहरूप नहीं है और जीवत्वशक्ति यह बताती है कि देह के संयोग से तेरा जीवन नहीं है, तेरा जीवन तो चैतन्यरूप भावप्राणों से है।

यह चितिशक्ति अर्थात् चैतन्यरूप रहना आत्मा का लक्षण है और जीवत्वशक्ति इस लक्षण से लक्षित किया जानेवाला, पहिचाना जानेवाला लक्ष्य है।

इसप्रकार यहाँ यह कहा गया है कि यह जीव जीवत्वशक्ति से जीवित रहता है और चितिशक्ति से चेतनरूप रहता है, जडरूप नहीं होता।

अब आगे दृशिशक्ति और ज्ञानशक्ति की चर्चा करते हैं —

३-४. दृशिशक्ति और ज्ञानशक्ति

दृशिशक्ति और ज्ञानशक्ति का स्वरूप आत्मख्याति में इसप्रकार स्पष्ट किया गया है —

अनाकार उपयोगमयी दृशिशक्ति है और साकार उपयोगमयी ज्ञानशक्ति है।

जिसमें ज्ञेयरूप आकार अर्थात् विशेष नहीं हैं; ऐसे दर्शनोपयोगमयी सत्तामात्र पदार्थ में उपयुक्त होेरूप दर्शनक्रियारूप दृशिशक्ति है और जो ज्ञेयपदार्थों के विशेषरूप आकारों में उपयुक्त होती है; वह ज्ञानोपयोगमयी ज्ञानशक्ति है।

अनाकुलत्वलक्षणा सुखशक्तिः ।

ध्यान रहे, यहाँ शक्तियों का प्रकरण होने से सामान्य अवलोकनरूप दर्शन गुण को दृशिशक्ति और विशेष जाननेरूप ज्ञानगुण को ज्ञानशक्ति कहा गया है।

इसप्रकार जीवत्वशक्ति में यह बताया था कि यह आत्मा त्रिकाल अपने चेतनप्राणों से जीवित रहता है और चितिशक्ति में यह बताया था कि वह जड़रूप नहीं होता तथा अब इन दृशिशक्ति और ज्ञानशक्ति में यह बताया जा रहा है कि आत्मा का वह चेतनस्वरूप सामान्यग्राही दर्शनोपयोग और विशेषग्राही ज्ञानोपयोगरूप है।

यह भगवान आत्मा लक्ष्यरूप जीवत्वशक्ति, लक्षणरूप चितिशक्ति और चितिशक्ति के ही विशेष देखने-जाननेरूप उपयोगमयी दृशिशक्ति और ज्ञानशक्ति से सम्पन्न होता है।

इस भगवान आत्मा को जीवत्वशक्ति के कारण जीव, चितिशक्ति के कारण चेतन और ज्ञान व दृशिशक्ति के कारण ज्ञाता-दृष्टा कहा जाता है।

इसप्रकार हम देखते हैं कि हमारे मूल प्रयोजनभूत जीवतत्त्वरूप भगवान आत्मा का स्वरूप अब धीरे-धीरे स्पष्ट होता जा रहा है।

जीवत्व, चिति, दृशि और ज्ञानशक्ति की चर्चा करने के बाद अब सुखशक्ति की चर्चा करते हैं —

५. सुखशक्ति

सुखशक्ति का स्वरूप स्पष्ट करते हुए आचार्य अमृतचन्द्र आत्मख्याति में लिखते हैं —

अनाकुलता लक्षणवाली सुखशक्ति है। यह एक सार्वभौमिक सत्य है कि सभी प्राणी सुख चाहते हैं और दुःख से डरते हैं। यही कारण है कि प्रत्येक आत्मार्थी के लिए अनाकुलत्व लक्षणवाली यह सुखशक्ति सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इसीलिए ४७ शक्तियों के निरूपण में जीवत्व, चिति, दृशि और ज्ञानशक्ति के तत्काल बाद इसकी चर्चा की गई है। ज्ञान-दर्शनरूप चेतना तो भगवान आत्मा का लक्षण है; अतः उनकी चर्चा तो सर्वप्रथम होनी ही चाहिए थी। आत्मा को सच्चिदानन्द कहा जाता है। सत् में जीवत्व, चित् में चिति और ज्ञान-दर्शन तथा आनन्द में सुखशक्ति आ जाती है। इसप्रकार सच्चिदानन्द में आरंभ की पाँच शक्तियाँ आ जाती हैं।

यद्यपि आत्मा में जो अनंत शक्तियाँ हैं, वे सब भगवान आत्मा में एकसाथ ही रहती हैं, उनमें आगे-पीछे का कोई क्रम नहीं है; तथापि कहने में तो क्रम पड़ता ही है; क्योंकि सभी को एकसाथ कहना तो संभव है नहीं।

ऐसी स्थिति में यह आवश्यक नहीं है कि किस शक्ति को पहले रखें और किसको बाद में; फिर भी 'वस्तुस्वरूप आसानी से समझ में आ जाये' — इस दृष्टि से प्रस्तुतीकरण में आचार्यदेव एक क्रमिक विकास तो रखते ही हैं।

सुखशक्ति में श्रद्धाशक्ति और चारित्रशक्ति भी शामिल समझनी चाहिए; क्योंकि ४७ शक्तियों में श्रद्धा और चारित्रशक्ति का नाम नहीं है। सुखशक्ति के निर्मल परिणमन में अर्थात् अतीन्द्रिय आनन्द की कणिका जगने में श्रद्धा और चारित्रगुण के निर्मल परिणमन का महत्वपूर्ण योगदान है।

स्वरूपनिर्वर्तनसामर्थ्यरूपा वीर्यशक्तिः।

प्रश्न : इस सुखशक्ति के जानने से क्या लाभ है ?

उत्तर : अनादि से यह आत्मा परपदार्थों में ही सुख जानता-मानता रहा है; परपदार्थों में ही सुख की खोज करता रहा है; तथापि आजतक उसे रंचमात्र भी सुख की प्राप्ति नहीं हुई है; इसीकारण आकुल-व्याकुल हो रहा है। इस सुखशक्ति के स्वरूप को समझने से इसे यह पता चलेगा कि यह भगवान् आत्मा तो स्वयं सुख का पिण्ड है, आनन्द का कंद है; सुख प्राप्ति के लिए इसे पर की ओर देखने की रंचमात्र भी आवश्यकता नहीं है।

दूसरे, यह आत्मा जिन शुभभावों और पुण्यकर्म को सुख का कारण जानकर आज तक अपनाता रहा है; वे सुख के कारण नहीं हैं, सुख का कारण तो स्वयं अपना आत्मा है — यह जानकर अपने उपयोग को वहाँ से हटाकर अपने आत्मा के सम्मुख करेगा।

इसप्रकार इस सुखशक्ति को समझने के उपरान्त अब वीर्यशक्ति की चर्चा करते हैं —

६. वीर्यशक्ति

वीर्यशक्ति का स्वरूप आत्मख्याति में इसप्रकार समझाया गया है— स्वरूप की रचना की सामर्थ्यरूप वीर्यशक्ति है।

जब यह भगवान् आत्मा अरहंत-सिद्धदशा को प्राप्त हो जाता है; तब उसके अनंतदर्शन, अनंतज्ञान, अनंतसुख और अनंतवीर्य प्रगट हो जाते हैं। इन्हें अनंतचतुष्टय कहते हैं।

उक्त अनंतचतुष्टय दृशिशक्ति, ज्ञानशक्ति, सुखशक्ति और वीर्यशक्ति का ही परिपूर्ण प्रस्फुटन है। वैसे तो अरहंत-सिद्ध अवस्था में सभी शक्तियाँ पूर्णतः प्रस्फुटित हो जाती हैं, पूर्ण निर्मलदशा को प्राप्त हो जाती हैं; तथापि प्रमुखरूप से अनंतचतुष्टय के रूप में उल्लेख उक्त शक्तियों के निर्मल परिणमन का ही होता रहा है।

ज्ञान-दर्शन तो आत्मा का लक्षण है और सुख एक ऐसी वस्तु है कि जिसकी कामना सभी को है तथा वीर्यशक्ति के बिना इनकी रचना कौन करेगा; क्योंकि प्रत्येक वस्तु के स्वरूप की रचना करनेवाली अर्थात् उनके निर्मल परिणमन में हेतु तो यही वीर्यशक्ति है।

इसप्रकार ये चार शक्तियाँ अनंतचतुष्टय के रूप में उल्लसित होती हैं; प्रस्फुटित होती हैं, उछलती हैं। यही कारण है कि इनका निरूपण आरंभ में ही किया गया है।

जीवत्वशक्ति तो जीव का जीवन ही है और चितिशक्ति उसके चेतनत्व को कायम रखनेवाली शक्ति है। चितिशक्ति के ही दो रूप हैं — ज्ञान और दर्शन; जो आत्मा के लक्षण हैं। जिसके अतीन्द्रिय सुखरूप परिणमन की चाह सभी को है, वह अनाकुलत्वलक्षण सुखशक्ति आनन्दरूप है। इनके निरूपण के उपरान्त वीर्यशक्ति का निरूपण क्रमप्राप्त ही है; क्योंकि अनन्तचतुष्टय में तीन चतुष्टय तो आरंभ की पाँच या तीन शक्तियों में ही समाहित हो गये हैं; अब इस वीर्यशक्ति के निरूपण से हमारे लिए परम इष्ट अनन्त चतुष्टय पूर्ण हो जायेंगे।

अखण्डितप्रतापस्वातंत्र्यशालित्वलक्षणा प्रभुत्वशक्तिः। सर्वभावव्यापकैकभावरूपा विभुत्वशक्तिः।

इसप्रकार हम देखते हैं कि आरंभ की छह शक्तियों में अनंतचतुष्टय के बीज विद्यमान हैं।

ध्यान रहे, इस वीर्यशक्ति का माता-पिता के रज-वीर्य से कोई संबंध नहीं है; क्योंकि वे तो जड़ हैं, पुद्गल के परिणमन हैं। इसीप्रकार तीर्थंकर को जन्म से ही प्राप्त होनेवाले अतुल्यबल से भी इसका कोई संबंध नहीं है; क्योंकि वह भी शारीरिक बल से ही संबंध रखता है।

इस वीर्यशक्ति का संबंध अनंतचतुष्टय में शामिल अनंतवीर्य से है। अनंतवीर्य इस वीर्यशक्ति के पूर्ण निर्मल परिणमन का ही नाम है।

इसप्रकार वीर्यशक्ति की चर्चा के बाद अब प्रभुत्वशक्ति की चर्चा करते हैं।

७. प्रभुत्वशक्ति

प्रभुत्वशक्ति का स्वरूप आचार्य अमृतचन्द्र आत्मख्याति में इसप्रकार स्पष्ट करते हैं —

अखण्डितप्रताप और स्वतंत्रता से सम्पन्न होना है लक्षण जिसका; वह प्रभुत्वशक्ति है।

प्रभु अर्थात् प्रभावशाली, पूर्णतः समर्थ। अनंत महिमावंत, अखण्डित प्रताप से सम्पन्न और पूर्णतः स्वतंत्र पदार्थ; जिसमें रंचमात्र भी दीनता न हो, जिसे पर के सहयोग की रंचमात्र भी आवश्यकता नहीं हो; वह पदार्थ प्रभु कहा जाता है।

अपना भगवान् आत्मा भी एक ऐसा ही प्रभु पदार्थ है, अनंतप्रभुता से सम्पन्न है, अनंत महिमावंत है, अखण्डित प्रतापवंत है, पूर्णतः स्वतंत्र समर्थ पदार्थ है; क्योंकि वह प्रभुत्वशक्ति से सम्पन्न है। उसमें और उसके असंख्य प्रदेशों में, अनन्त गुणों में और उनकी निर्मलपर्यायों में प्रभुत्वशक्ति का रूप विद्यमान है। इसकारण यह भगवान् आत्मा प्रभु है, उसके असंख्य प्रदेश प्रभु हैं, उसके अनंत गुण प्रभु हैं और उनकी अनंत निर्मलपर्यायें भी प्रभु हैं।

इसप्रकार की अनंत प्रभुता से सम्पन्न भगवान् आत्मा तू स्वयं है, मैं स्वयं हूँ, हम सब स्वयं हैं; — ऐसा जानकर हे आत्मन् ! तू अपनी प्रभुता को पहिचान। ऐसा करने से तेरी वर्तमान पर्याय में विद्यमान पामरता समाप्त होगी और प्रभुत्व शक्ति का निर्मल परिणमन होकर तेरी पर्याय में भी प्रभुता प्रगट हो जायेगी।

इसप्रकार प्रभुत्वशक्ति का निरूपण करने के उपरान्त अब विभुत्वशक्ति की चर्चा करते हैं —

८. विभुत्वशक्ति

विभुत्वशक्ति का स्वरूप आत्मख्याति में इसप्रकार स्पष्ट किया गया है —

विभुत्वशक्ति सर्वभावों में व्यापक एक भावरूप होती है।

जीवत्व, चिति, दृशि और ज्ञान आदि सभी भावों अर्थात् शक्तियों में व्याप्त एकभावरूप शक्ति का नाम विभुत्वशक्ति है।

विश्वविश्वसामान्यभावपरिणतात्मदर्शनमयीसर्वदर्शित्वशक्तिः, विश्वविश्वविशेषभाव-परिणतात्मज्ञानमयी सर्वज्ञत्वशक्तिः।

तात्पर्य यह है कि इस भगवान् आत्मा में एक ऐसी शक्ति भी विद्यमान है कि जो स्वयं तो सभी भावों (शक्तियों) में व्याप्त है ही; साथ में इसका रूप सभी शक्तियों में होने से सभी शक्तियाँ भी एक-दूसरे में व्याप्त हैं।

शक्तियों के परस्पर भिन्न होने पर भी इस शक्ति के कारण वे शक्तियाँ परस्पर एक-दूसरे में व्याप्त हैं; इसीकारण यह भगवान् आत्मा अखण्ड है, अविभक्त है, एक है।

इसप्रकार प्रभुत्वशक्ति और विभुत्वशक्ति के विवेचन के उपरान्त अब सर्वदर्शित्व और सर्वज्ञत्वशक्ति के स्वरूप पर विचार करते हैं।

९-१०. सर्वदर्शित्व और सर्वज्ञत्वशक्ति

इन शक्तियों का स्वरूप आत्मख्याति में जिसप्रकार स्पष्ट किया गया है, उसका हिन्दी अनुवाद इसप्रकार है —

सर्वदर्शित्वशक्ति समस्त विश्व के सामान्य भाव को देखनेरूप से परिणत आत्मदर्शनमयी है और सर्वज्ञत्वशक्ति समस्त विश्व के विशेषभावों को जाननेरूप से परिणत आत्मज्ञानमयी है।

दोनों शक्तियों का स्वरूप थोड़े-बहुत अन्तर के साथ लगभग एक जैसा ही है। यद्यपि दोनों शक्तियाँ मूलतः आत्ममयी हैं; तथापि दोनों में अन्तर है कि सर्वदर्शित्वशक्ति आत्मदर्शनमयी होते हुए भी समस्त विश्व के सामान्यभाव (सत्सामान्य) को देखनेरूप है और सर्वज्ञत्वशक्ति आत्मज्ञानमयी होते हुए भी समस्त विश्व के विशेषभावों को जाननेरूप है। सर्वदर्शित्वशक्ति देखनेरूप है और सर्वज्ञत्वशक्ति जाननेरूप है तथा सर्वदर्शित्वशक्ति सामान्य भाव को विषय बनाती है और सर्वज्ञत्वशक्ति विशेष भावों को विषय बनाती है।

किसी वस्तु को जानने के पहले जो सामान्य अवलोकन होता है, उसे दर्शन कहा जाता है। यह पहले और बाद का भेद भी छद्मस्थ (अल्पज्ञानी) के ही होता है, सर्वदर्शी-सर्वज्ञ भगवान् के नहीं; क्योंकि सर्वज्ञ भगवान् के स्वपर समस्त वस्तुओं संबंधी दर्शनोपयोग और ज्ञानोपयोग एकसाथ ही होते हैं। चूँकि यहाँ दृशि और ज्ञानशक्ति की बात नहीं है, यहाँ तो सर्वदर्शित्व और सर्वज्ञत्वशक्ति की बात चल रही है; अतः यहाँ पहले और बाद का भेद किए बिना यह कहना ही ठीक है कि सामान्यावलोकन दर्शन है और विशेषावलोकन ज्ञान है।

ध्यान रहे कि अवलोकन शब्द अकेले दर्शन का वाचक नहीं; अपितु दर्शन (देखने) और ज्ञान (जानने) दोनों को ही अवलोकन कहा जाता है।

इसीप्रकार प्रकाशन शब्द का उपयोग देखने और जानने — दोनों ही अर्थों में होता है; क्योंकि दोनों ही शक्तियाँ समानरूप से स्वपरप्रकाशक हैं और दोनों का विषय भी लोकालोक है।

लोकालोक को देखने-जानने के कारण यह आत्मा लोकालोकमय नहीं हो जाता, आत्ममय ही रहता है — यह बताने के लिए ही दोनों के स्वरूप में आत्मदर्शनमयी और आत्मज्ञानमयी पदों का प्रयोग किया गया है। तात्पर्य यह है कि दोनों ही शक्तियाँ आत्मात्मय हैं, लोकालोकमय नहीं।

नीरूपात्मप्रदेशप्रकाशमानलोकालोकाकारमेचकोपयोगलक्षणा स्वच्छत्वशक्तिः ।

यद्यपि दृशि और ज्ञानशक्ति में देखने-जानने की बात आ गई थी; तथापि सबको देखने-जानने की बात नहीं आई थी। इसकारण ही यहाँ समस्त लोकालोक को देखने-जाननेरूप परिणमित होने की बात को सर्वदर्शित्व और सर्वज्ञत्वशक्ति के रूप में कहा जा रहा है।

इन शक्तियों के नाम से ही बात स्पष्ट हो जाती है कि यहाँ स्वपर सभी को देखने-जानने की बात है; क्योंकि इनके नाम ही सर्वदर्शित्व और सर्वज्ञत्वशक्ति हैं।

ध्यान रहे, भगवान् आत्मा में ये सभी शक्तियाँ वस्तुरूप से हैं; काल्पनिक नहीं। अतः यह कथन निश्चयनय का है, व्यवहारनय का नहीं। तात्पर्य यह है कि इस भगवान् आत्मा में स्वपर को देखने-जानने की शक्ति है — यह बात परमसत्य है।

सर्वदर्शित्व और सर्वज्ञत्वशक्ति की चर्चा के उपरान्त अब स्वच्छत्वशक्ति की चर्चा करते हैं —

११. स्वच्छत्वशक्ति

इस ग्यारहवीं स्वच्छत्वशक्ति का स्पष्टीकरण आत्मख्याति में इसप्रकार किया गया है —

अमूर्तिक प्रदेशों में प्रकाशमान लोकालोक के आकारों से मेचक अर्थात् अनेकाकार उपयोग है लक्षण जिसका, वह स्वच्छत्वशक्ति है।

जिसप्रकार पौद्गलिक अचेतन दर्पण स्वभावतः ही स्वच्छ होता है, उसके सामने जो भी पौद्गलिक (मूर्तिक) पदार्थ आते हैं; वे सभी पदार्थ बिना किसी भेदभाव के एकसाथ उसमें प्रतिबिम्बित हो जाते हैं, झलक जाते हैं। उसीप्रकार यह भगवान् आत्मा भी स्वभाव से अत्यन्त स्वच्छ है, निर्मल है और इसमें भी सभी पदार्थ एकसाथ प्रतिबिम्बित हो जाते हैं, झलक जाते हैं, देख लिये जाते हैं, जान लिये जाते हैं।

ध्यान रहे, पौद्गलिक दर्पण में तो मात्र मूर्तिक पुद्गल ही झलकते हैं; किन्तु इस भगवान् आत्मा में मूर्तिक पदार्थों के साथ-साथ अमूर्तिक जीव, धर्म, अधर्म, आकाश और काल — ये सभी पदार्थ, इनके गुण तथा उनकी समस्त भूत, भावी और वर्तमान पर्यायें भी प्रतिबिम्बित हो जाती हैं।

एक बात और भी है कि दर्पण में तो वही मूर्तिक पदार्थ झलकते हैं; जो उसके सामने आते हैं; परन्तु भगवान् आत्मा के स्वच्छ स्वभाव में तो समीपवर्ती, दूरवर्ती, भूतकालीन, वर्तमान एवं भावी, सूक्ष्म और स्थूल सभी पदार्थ एकसाथ एक जैसे स्पष्ट झलक जाते हैं। दर्पण में तो समीपवर्ती पदार्थ स्पष्ट और दूरवर्ती पदार्थ अस्पष्ट झलकते हैं; किन्तु आत्मा में तो समीपवर्ती-दूरवर्ती, स्थूल-सूक्ष्म, भूतकालीन एवं भावी सभी पदार्थ वर्तमानवत् ही स्पष्ट प्रतिभासित होते हैं। अतः यहाँ दर्पण का उदाहरण मात्र पदार्थों के प्रतिबिम्बित होने तक ही सीमित रखना चाहिए।

भगवान् आत्मा में पदार्थों के झलकने का जो अद्भुत स्वच्छ स्वभाव है, उसी का नाम स्वच्छत्वशक्ति है।

दृशिशक्ति, ज्ञानशक्ति, सर्वदर्शित्वशक्ति और सर्वज्ञत्वशक्ति के साथ-साथ यह स्वच्छत्वशक्ति और आगे की आनेवाली प्रकाशशक्ति — ये सभी शक्तियाँ आत्मा के देखने-जाननेरूप स्वभाव से ही संबंधित हैं। दृशिशक्ति और ज्ञानशक्ति में सामान्यरूप देखने-जानने की बात कही गई है तो सर्वदर्शित्व और सर्वज्ञत्वशक्ति में सभी को देखने-जानने की बात कही गई है।

सभी पदार्थों के देखने-जाननेरूप कार्य में आत्मा को सभी ज्ञेयों के पास जाना पड़े — ऐसा नहीं है; क्योंकि इस भगवान आत्मा के स्वच्छ स्वभाव में समस्त लोकालोक सहजभाव से दिखाई देता है, जानने में आ जाता है। आत्मा के इस सहज निर्मल स्वभाव का नाम ही स्वच्छत्वशक्ति है।

इस भगवान आत्मा के ज्ञानस्वभाव में मात्र परपदार्थ ही नहीं झलकते; अपने आत्मा का अनुभव भी होता है। अपना आत्मा अनुभव में आये — ऐसा भी आत्मा का स्वभाव ही है।

आत्मा के इस स्वभाव का नाम ही प्रकाशशक्ति है। प्रकाशशक्ति की चर्चा विस्तार से यथास्थान की जायेगी। इसप्रकार हम देखते हैं कि उक्त छह शक्तियाँ आत्मा के देखने-जाननेरूप स्वभाव से ही संबंध रखती हैं।

जिसप्रकार दर्पण में कितने ही पदार्थ क्यों न झलकें, उनका बोझा दर्पण पर नहीं पड़ता; इनके झलकने से उसमें किसी भी प्रकार की विकृति नहीं होती। उसीप्रकार इस भगवान आत्मा के स्वच्छत्वस्वभाव में सम्पूर्ण लोकालोक झलकें तो आत्मा पर कुछ बोझा नहीं पड़ता, कुछ विकृति नहीं आती; क्योंकि वे पदार्थ उसके जानने में तो आते हैं, पर उसमें प्रवेश नहीं करते, उसके पास भी नहीं फटकते। न तो परपदार्थ आत्मा में आते हैं और न आत्मा ही उन्हें जानने के लिए उनके पास जाता है। न तो उन ज्ञेय पदार्थों के कारण आत्मा की स्वाधीनता पर ही कुछ फर्क पड़ता है और न ही आत्मा के जानने के कारण उन ज्ञेय पदार्थों की स्वतंत्रता ही बाधित होती है।

जब इस स्वच्छत्वशक्ति का पूर्ण निर्मल परिणमन होता है; तब सारा लोकालोक आत्मा में झलकता है और जब अल्प निर्मलता होती है, तब पदार्थ कुछ अस्पष्ट झलकते हैं; पर झलकते तो हैं ही। इसप्रकार यह स्वच्छत्वशक्ति आत्मा के उस निर्मल स्वभाव का नाम है कि जिसमें लोकालोक प्रतिबिम्बित होता है — ऐसा होने पर भी वह निर्भर ही रहता है, स्वाधीन ही रहता है; लोकालोक के झलकने से उसकी सुख-शान्ति में कोई बाधा नहीं आती।

इस स्वच्छत्वशक्ति का रूप सभी गुणों में है; इसकारण सभी गुण स्वच्छ हैं। ज्ञान स्वच्छ है, श्रद्धा स्वच्छ है, चारित्र स्वच्छ है, सुख स्वच्छ है। अरे भाई ! सभी गुणों के साथ-साथ यह भगवान आत्मा भी स्वच्छ है। जब यह स्वच्छत्वशक्ति पर्याय में परिणमित होती है तो इस शक्ति का रूप सभी अविकारी पर्यायों में होने से वे भी स्वच्छतारूप परिणमन करती हैं।

ज्ञेयों के कारण ज्ञान रंचमात्र भी विकृत नहीं होता — यह सब इस स्वच्छत्वशक्ति का ही प्रताप है। द्वादशांग के पाठी इन्द्रादि जैसे लोग स्तुति करें तथा कोई हजारों गालियाँ देवें — दोनों बातें ज्ञान की ज्ञेय बनें, फिर भी स्तुति करनेवालों के प्रति राग न हो और गालियाँ देनेवालों के प्रति द्वेष न हो — ऐसी वीतरागता भी तो चारित्रगुण में स्वच्छत्वशक्ति का रूप होने से ही हुई है।

स्वयंप्रकाशमानविशदस्वसंवित्तिमयी प्रकाशशक्तिः। क्षेत्रकालानवच्छिन्नचिद्विलासात्मिका असंकुचितविकाशत्वशक्तिः।

इस स्वच्छत्वशक्ति का स्वरूप ख्याल में आये तो कमाल हो जाये; पर के जानने से ज्ञान मलिन हो जायेगा, मेचक हो जायेगा, अनेकाकार हो जायेगा – इसप्रकार की आकुलता ही नहीं होगी। इसीकारण पर के जानने को मिथ्यात्व कहना भी सहज संभव न रहेगा।

स्वच्छत्वशक्ति की चर्चा के उपरान्त अब प्रकाशशक्ति की चर्चा करते हैं –

१२. प्रकाशशक्ति

इस बारहवीं प्रकाशशक्ति का स्वरूप आत्मख्याति में इसप्रकार स्पष्ट किया गया है –

जो स्वयंप्रकाशमान है, विशद, स्पष्ट और निर्मल स्वसंवेदनमय स्वानुभव से युक्त है; वह प्रकाशशक्ति है।

११ वीं स्वच्छत्वशक्ति में इस बात पर वजन दिया गया है कि यह आत्मा लोकालोक को जाने अथवा लोकालोक इसके ज्ञान में झलकें – ऐसा इसका स्वभाव है। अब इस १२ वीं प्रकाशशक्ति में यह कहा जा रहा है कि न केवल लोकालोक को, अपितु स्वयं को स्पष्टरूप से जाने अर्थात् आत्मा का अनुभव करे – ऐसी भी एक शक्ति आत्मा में है, जिसका नाम है प्रकाशशक्ति।

यहाँ एक प्रश्न संभव है कि लोकालोक में अपना आत्मा भी तो आ गया; अतः स्वच्छत्वशक्ति के कारण वह भी आत्मा के ज्ञानस्वभाव में, स्वच्छस्वभाव में झलक जायेगा, जान लिया जायेगा। उसके लिए अलग से इस प्रकाशशक्ति की क्या आवश्यकता है?

अरे भाई ! यह प्रकाशशक्ति स्वसंवेदनमयी है, स्वच्छत्वशक्ति स्वसंवेदनमयी नहीं है। परंपदार्थ तो मात्र आत्मा में देखे-जाने ही जाते हैं; किन्तु अपने भगवान आत्मा का अनुभव किया जाता है। वह अनुभव स्वसंवेदनमयी प्रकाशशक्ति का ही कार्य है।

इस शक्ति की श्रद्धा और ज्ञान होने से आत्मानुभव के लिए पर के सहयोग की आकांक्षा से उत्पन्न होनेवाली आकुलता का अभाव होकर निराकुल शान्ति की प्राप्ति होती है।

इसप्रकार प्रकाशशक्ति की चर्चा करने के उपरान्त अब असंकुचितविकासत्वशक्ति की चर्चा करते हैं –

१३. असंकुचितविकासत्वशक्ति

इस तेरहवीं असंकुचितविकासत्वशक्ति का स्वरूप आत्मख्याति में इसप्रकार स्पष्ट किया गया है – असंकुचितविकासत्वशक्ति क्षेत्र और काल से अमर्यादित चिद्विलासात्मक (चैतन्य के विलासस्वरूप) है।

अनंत शक्तियों से सम्पन्न इस भगवान आत्मा में एक शक्ति ऐसी भी है कि जिसके कारण यह आत्मा बिना किसी संकोच के पूर्णरूप से विकसित होता है। तात्पर्य यह है कि इस भगवान आत्मा का प्रत्येक गुण पर्याय में निर्मलता के साथ-साथ पूर्णता को भी प्राप्त होता है। ज्ञानगुण केवलज्ञानरूप परिणमित होता है, श्रद्धागुण क्षायिकसम्यक्त्वरूप परिणमित होता है।

अन्याक्रियमाणान्याकारकैकद्रव्यात्मिका अकार्यकारणत्वशक्तिः।

यह शक्ति क्षेत्र और काल से अबाधित है और चैतन्य के विलासरूप है।

तात्पर्य यह है कि इस आत्मा के चैतन्य के विलास में क्षेत्र और काल संबंधी कोई संकोच नहीं है, सीमा नहीं है; मर्यादा नहीं है। इस शक्ति का रूप सभी गुणों में होने से वे भी असंकुचितविकासत्व को प्राप्त होते हैं। तात्पर्य यह है कि वे अपने-अपने स्वभाव के अनुसार पूर्ण विकास को प्राप्त होते हैं। उन्हें अपने अविच्छिन्न विकास के लिए क्षेत्र व काल संबंधी किसी भी प्रकार का संकोच नहीं होता, बाधा उपस्थित नहीं होती; क्योंकि उनमें असंकुचितविकासत्वशक्ति का रूप है।

अपने स्वभाव और सीमा में परिपूर्ण विकसित होने के लिए तुझे पर के सहयोग की रंचमात्र भी आवश्यकता नहीं है; क्योंकि तुझमें एक असंकुचितविकासत्व नाम की शक्ति है; जिसके कारण तू स्वयं में परिपूर्ण विकास कर सकता है।

इसप्रकार हम देखते हैं कि अपने स्वभाव की सीमा में असीमित विकास होना, असंकुचितविकास होना ही असंकुचितविकासत्वशक्ति का कार्य है। इस शक्ति का रूप सभी शक्तियों में होने से सभी शक्तियों का अपने-अपने स्वभावानुसार अपनी-अपनी सीमा में असीमित विकास हो सकता है और यह विकास अनंत शक्तियों के संग्रहालय भगवान आत्मा के आश्रय से होता है, त्रिकाली ध्रुव भगवान आत्मा के ज्ञान, श्रद्धान और ध्यान से होता है।

इसप्रकार असंकुचितविकासत्वशक्ति की चर्चा करने के उपरान्त अब अकार्यकारणत्वशक्ति की चर्चा करते हैं।

१४. अकार्यकारणत्वशक्ति

इस चौदहवीं अकार्यकारणत्वशक्ति की परिभाषा आत्मख्याति में इसप्रकार दी गई है —

इस भगवान आत्मा में एक शक्ति ऐसी भी है कि जिसके कारण यह आत्मा न तो अन्य से किया जाता है और न अन्य को करता ही है।

एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कर्ता नहीं है, कारण नहीं है, कार्य नहीं है — यह सभी द्रव्यों के संदर्भ में जैनदर्शन का सामान्य कथन है। इसी सिद्धान्त को आधार बनाकर यहाँ अपने आत्मा पर घटित किया जा रहा है। अनंत शक्तियों के संग्रहालय इस भगवान आत्मा में एक शक्ति ऐसी भी है कि जिसके कारण यह भगवान आत्मा न तो किसी का कार्य है और न किसी का कारण है। द्रव्य और गुण तो अनादि-अनंत होते हैं; इसकारण वे कार्य ही नहीं हैं; अतः उनके संदर्भ में तो किसी परद्रव्य के कार्य होने का प्रश्न खड़ा नहीं होता। कार्य तो परिणमन को कहा जाता है, पर्याय को कहा जाता है।

इस भगवान आत्मा का परिणमन भी किसी परद्रव्य का कार्य नहीं है। तात्पर्य यह है कि आत्मा में होनेवाला परिणमन पर के कारण नहीं होता। इसीप्रकार परद्रव्यों के द्रव्य-गुण भी त्रिकाली होने से कार्य नहीं होते; उनका परिणमन ही उनका कार्य है। उनके परिणमन का कारण यह आत्मा नहीं है; इसलिए यह किसी का कारण भी नहीं है। इसप्रकार न तो यह भगवान आत्मा किसी परद्रव्य का

परात्मनिमित्तकज्ञेयज्ञानाकारग्रहणग्राहणस्वभावरूपा परिणम्यपरिणामकत्वशक्तिः।
अन्यूनानतिरिक्तस्वरूपनियतत्वरूपा त्यागोपादानशून्यत्वशक्तिः।

कार्य है और न किसी परद्रव्य का कारण है। किसी परद्रव्य का कार्य या कारण न बने — इस भगवान् आत्मा का ऐसा ही स्वभाव है। भगवान् आत्मा के इस स्वभाव का नाम अकार्यकारणत्वशक्ति है।

यह शक्ति अनंत स्वाधीनता की सूचक और निर्भर रहने का अमोघ उपाय है। यदि एकबार यह बात चित्त की गहराई में उतर जाये तो पर में कुछ करने की अनंत आकुलता और पर मुझमें कुछ कर न दें — इसप्रकार का भय उसी समय समाप्त हो सकता है।

यह भगवान् आत्मा पूर्णतः स्वाधीन है; न तो इसे पर में कुछ करना है और न स्वयं के कार्य के लिए पर के भरोसे ही रहना है; क्योंकि इसमें अनन्त शक्तियों के साथ-साथ एक ऐसी भी शक्ति है कि जिसके कारण यह आत्मा न तो किसी का कार्य है और न किसी का कारण ही है। किसी का कार्य व किसी का कारण नहीं होना ही अकार्यकारणत्वशक्ति का स्वभाव है, कार्य है।

इसप्रकार अकार्यकारणत्वशक्ति की चर्चा के उपरान्त अब परिणम्यपरिणामकत्वशक्ति की चर्चा करते हैं —

१५. परिणम्य-परिणामकत्वशक्ति

इस पन्द्रहवीं परिणम्य-परिणामकत्वशक्ति की परिभाषा आत्मख्याति में इसप्रकार दी गई है —
परनिमित्तिक ज्ञेयाकारों के ग्रहण करने और स्वनिमित्तिक ज्ञानाकारों के ग्रहण कराने के स्वभावरूप परिणम्य-परिणामकत्वशक्ति है।

देखो, पहले अकार्यकारणत्वशक्ति में यह बताया गया था कि आत्मा न तो पर का कार्य है और न पर का कारण। अब इस परिणम्य-परिणामकत्वशक्ति में यह बताया जा रहा है कि पर का कार्य या कारण नहीं होने पर भी यह आत्मा पर को जानता है और पर के द्वारा जाना भी जाता है। न केवल पर को जानता है और पर के द्वारा जाना जाता है; अपितु स्वयं को भी जानता है और स्वयं के द्वारा जाना भी जाता है। इसप्रकार इस आत्मा का स्वभाव स्व और पर के जानने एवं स्व और पर के द्वारा जानने में आने का है।

मैं स्वयं को जानूँ और पर को भी जानूँ; इसीप्रकार स्वयं के द्वारा जाना जाऊँ और पर के द्वारा भी जाना जाऊँ — इसप्रकार इसमें चार बिन्दु हो गये।

पहला स्वयं को जानना, दूसरा पर को जानना, तीसरा स्वयं के द्वारा जानने में आना और चौथा पर के द्वारा जानने में आना। इन चारों प्रकार की योग्यता का नाम ही परिणम्य-परिणामकत्वशक्ति है।

परिणम्य-परिणामकत्वशक्ति के उपरान्त अब त्यागोपादानशून्यत्वशक्ति की चर्चा करते हैं —

१६. त्यागोपादानशून्यत्वशक्ति

त्यागोपादानशून्यत्वशक्ति का स्वरूप आत्मख्याति में इसप्रकार स्पष्ट किया है —

जो न तो कम है और न अधिक ही है — ऐसे सुनिश्चित स्वरूप में रहने रूप है स्वरूप जिसका, वह त्यागोपादानशून्यत्वशक्ति है।

षट्स्थानपतितवृद्धिहानिपरिणतस्वरूपप्रतिष्ठत्वकारणविशिष्टगुणात्मिका अगुरुलघुत्व-शक्तिः। क्रमाक्रमवृत्तवृत्तित्वलक्षणा उत्पादव्ययध्रुवत्वशक्तिः।

यह भगवान् आत्मा स्वयं में परिपूर्ण तत्त्व है, इसमें न तो कोई कमी है और न कुछ अधिकता ही है। यदि कमी होती तो ग्रहण करना अनिवार्य हो जाता और अधिकता होती तो उसका त्याग करना भी अनिवार्य हो जाता।

ग्रहण और त्याग क्रमशः कमी और अधिकता के सूचक हैं। यदि हमें कुछ ग्रहण करने का भाव है तो इसका अर्थ यह हुआ कि हम अपने स्वभाव में कुछ न्यूनता का अनुभव करते हैं। इसीप्रकार त्यागने के भाव के साथ भी यह प्रतीति कार्य करती है कि हममें कुछ अधिकता है, जिसे छोड़ना आवश्यक है। त्रिकाली ध्रुव भगवान् आत्मा में ऐसा कुछ भी नहीं है, जिसे त्यागा जाये और ऐसी कोई कमी भी नहीं है कि बाहर से उसकी पूर्ति करनी पड़े। भगवान् आत्मा के इस परिपूर्ण स्वभाव का नाम ही त्यागोपादानशून्यत्व शक्ति है।

त्यागोपादानशून्यत्वशक्ति का कथन निश्चयनयाश्रित होने से परमार्थ है, सत्यार्थ है और ग्रहण-त्याग की चर्चा व्यवहारनयाश्रित होने से असत्यार्थ है, अभूतार्थ है।

त्यागोपादानशून्यत्वशक्ति समझने के उपरान्त अब अगुरुलघुत्वशक्ति की चर्चा करते हैं -

१७. अगुरुलघुत्वशक्ति

अगुरुलघुत्वशक्ति का स्वरूप आत्मख्याति में इसप्रकार स्पष्ट किया है -

अगुरुलघुत्वशक्ति षट्स्थानपतित वृद्धि-हानि रूप से परिणमित स्वरूप प्रतिष्ठत्व का कारणरूप विशेष गुणात्मक है।

न केवल आत्मा में, अपितु प्रत्येक पदार्थ की प्रत्येक पर्याय में षट्गुणी वृद्धि और षट्गुणी हानि निरन्तर हुआ करती है। गजब की बात तो यह है कि यह वृद्धि और हानि एक ही वस्तु में एकसाथ ही होती है। इसप्रकार अगुरुलघुत्वशक्ति की चर्चा के उपरान्त अब उत्पाद-व्यय-ध्रुवत्वशक्ति की चर्चा करते हैं -

१८. उत्पाद-व्यय-ध्रुवत्वशक्ति

इस अठारहवीं उत्पाद-व्यय-ध्रुवत्वशक्ति की चर्चा आत्मख्याति में इसप्रकार की गई है -

क्रमवृत्ति और अक्रमवृत्तिरूप वर्तना है लक्षण जिसका, वह उत्पाद-व्यय-ध्रुवत्वशक्ति है।

प्रत्येक द्रव्य गुण और पर्यायवाला होता है तथा सत् द्रव्य का लक्षण है; जो उत्पाद, व्यय और ध्रुवत्व से युक्त होता है।

यहाँ यह बताया जा रहा है कि अनन्त शक्तियों से सम्पन्न भगवान् आत्मा में एक ऐसी भी शक्ति है कि जिसके कारण यह भगवान् आत्मा स्वयं ही उत्पाद, व्यय और ध्रुवत्व से सहित है। उक्त शक्ति का नाम ही उत्पाद-व्यय-ध्रुवत्व शक्ति है।

द्रव्यस्वभावभूतध्रौव्यव्ययोत्पादालिङ्गितसदृशविसदृशरूपैकास्तित्वमात्रमयी परिणाम-शक्तिः ।

तात्पर्य यह है कि इस भगवान् आत्मा को स्वयं का अस्तित्व धारण करने के लिए, स्वयं को कायम रखने के लिए पर की ओर देखने की आवश्यकता नहीं है। न तो ध्रुव अस्तित्व को टिकाये रखने में पर के सहयोग की आवश्यकता है और न स्वयं में प्रतिसमय होनेवाले उत्पाद-व्ययरूप परिवर्तन करने के लिए ही पर के सहयोग की अपेक्षा है; क्योंकि यह भगवान् आत्मा इस शक्ति के कारण स्वभाव से ही उत्पाद-व्यय-ध्रुवत्व सम्पन्न है।

इस उत्पादव्ययध्रुवत्वशक्ति को समझाने के उपरान्त अब परिणामशक्ति की चर्चा करते हैं —

१९. परिणामशक्ति

इस उन्नीसवीं परिणामशक्ति का स्वरूप आत्मख्याति में इसप्रकार स्पष्ट किया गया है —

द्रव्य के स्वभावभूत उत्पादव्ययध्रौव्य से आलिङ्गित सदृश और विसदृश एक रूप वाली अस्तित्वमयी परिणामशक्ति है।

उत्पाद, व्यय और ध्रुवत्व द्रव्य के स्वभाव हैं। इनमें ध्रुवत्वभाव सदृश परिणाम है, सदा एक जैसा रहनेवाला परिणाम है तथा उत्पाद-व्यय विसदृश परिणाम हैं; क्योंकि वे दोनों परस्पर विरुद्ध स्वभाववाले हैं। एक का स्वभाव उत्पन्न होनेरूप है और दूसरे का स्वभाव नाश होनेरूप है; इसकारण वे परस्पर विरुद्धस्वभाववाले हैं, विसदृशस्वभाववाले हैं।

उत्पाद-व्यय विसदृश व ध्रौव्य सदृशस्वभाववाला होने पर भी तीनों एक ही हैं; क्योंकि अस्तित्व तीनों का एक रूप में ही है। तीनों का नाम ही परिणाम है।

कुछ लोग परिणामन को ही परिणाम या भाव समझते हैं; किन्तु परिणाम व भाव शब्द परिणमित होनेवाले उत्पाद-व्यय के लिए भी प्रयुक्त होता है और अपरिणामी ध्रुव के लिए भी प्रयुक्त होता है।

परिणमित होकर भी ध्रुव रहना और ध्रुव रहकर भी परिणमित होना ही परिणामशक्ति का कार्य है अथवा परिणामशक्ति है।

कुछ लोग उत्पाद-व्यय-ध्रुवत्वशक्ति और परिणामशक्ति में भेद नहीं कर पाते हैं। इन दोनों में भेद करना आसान भी नहीं है; क्योंकि उत्पाद-व्यय-ध्रुवत्वशक्ति को क्रमाक्रमवृत्तवृत्ति लक्षणवाली कहा गया है और परिणामशक्ति को उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य से आलिङ्गित सदृश-विसदृश परिणामों की एकरूपतारूप कहा गया है।

दोनों शक्तियों में उत्पाद-व्यय-ध्रुवत्व तो है ही। इस कारण भेद समझने में कठिनाई होती है; परन्तु एक शक्ति में क्रमवर्ती पर्यायों और अक्रमवर्ती गुणोंवाले उत्पाद-व्यय-ध्रुवत्व से संयुक्त द्रव्यस्वभाव की चर्चा है तो दूसरी शक्ति में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य में विद्यमान सदृशता-विसदृशता की एकरूपता की चर्चा है।

कर्मबंधव्यपगमव्यंजितसहजस्पर्शादिशून्यात्मप्रदेशात्मिका अमूर्तत्वशक्तिः।

सकलकर्मकृतज्ञातृत्वमात्रातिरिक्तपरिणामकरणोपरमात्मिका अकर्तृत्वशक्तिः। सकल-कर्मकृतज्ञातृत्वमात्रातिरिक्तपरिणामानुभवोपरमात्मिका अभोक्तृत्वशक्तिः।

उत्पाद-व्यय-ध्रुवत्वशक्ति का कार्य उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य से संयुक्त होना मात्र है और परिणामशक्ति का कार्य परस्पर विरुद्ध-अविरुद्ध परिणामों का टिका रहना और परिणमित होते रहना है। ध्रुवरूप परिणाम तो अपरिणामी ही है, वह सदा अपरिणामी ही रहे – यह भी परिणामशक्ति का कार्य है और निरन्तर बदलनेवाले उत्पाद-व्ययरूप परिणाम अपने सुनिश्चितक्रमानुसार बदलते रहें, एक समय को भी बदले बिना न रहें – यह भी परिणामशक्ति का कार्य है।

ध्रुवरूप में रंचमात्र भी परिवर्तन नहीं होना और उत्पाद-व्ययरूप में निरन्तर परिणमित होते रहना आत्मवस्तु का मूलस्वरूप है। आत्मवस्तु के इसी मूलस्वरूप का नाम परिणामशक्ति है।

परिणामशक्ति के स्वरूप को जानने का पहला लाभ तो यह है कि हमारा मूल ध्रुवस्वभाव इसी शक्ति के कारण पूर्ण सुरक्षित है। वह अनादि से जैसा है, अनन्त काल तक वैसा ही रहेगा; न तो उसका नाश ही हो सकता है और न उसमें कोई बदलाव ही होता है।

दूसरे हममें होनेवाले सुनिश्चित परिवर्तन के लिए भी हमें पर की ओर देखने की आवश्यकता नहीं है; क्योंकि इस परिणामशक्ति के कारण मूल स्वभाव अर्थात् स्वभाव की ध्रुवता सहज ही कायम रहती है और पर्यायों में परिवर्तन भी सहज ही हुआ करता है।

इसप्रकार परिणामशक्ति की चर्चा के करने के उपरान्त अब अमूर्तत्वशक्ति की चर्चा करते हैं।

२०. अमूर्तत्वशक्ति

इस बीसवीं अमूर्तत्वशक्ति का स्वरूप आत्मख्याति में इसप्रकार स्पष्ट किया गया है –

यह अमूर्तत्वशक्ति कर्मबंध के अभाव से व्यक्त सहज स्पर्शादिशून्य आत्मप्रदेशात्मक है।

उक्त अमूर्तत्वशक्ति के कारण भगवान आत्मा रूप, रस, गंध और स्पर्श से रहित अमूर्त पदार्थ है। यह देह स्पर्शादिमय होने से मूर्त है और भगवान आत्मा अमूर्त है; अतः आत्मा देहादि से भिन्न ही है। आत्मद्रव्य के सभी गुणों और पर्यायों में अमूर्तत्वशक्ति का रूप होने से सभी गुण और पर्यायों भी अमूर्त हैं।

इसप्रकार अमूर्तत्वशक्ति का स्वरूप समझने के उपरान्त अब अकर्तृत्वशक्ति और अभोक्तृत्वशक्ति का स्वरूप समझते हैं –

२१-२२. अकर्तृत्वशक्ति और अभोक्तृत्वशक्ति

इस इक्कीसवीं अकर्तृत्वशक्ति और बाईसवीं अभोक्तृत्वशक्ति का स्वरूप आत्मख्याति में इसप्रकार स्पष्ट किया गया है –

ज्ञानभाव से भिन्न कर्मोदय से होनेवाले रागादि विकारी भावों के कर्तृत्व से रहित होनेरूप अकर्तृत्वशक्ति है। इसीप्रकार ज्ञानभाव से भिन्न कर्मोदय से होनेवाले रागादि विकारी परिणामों के अनुभव से, भोक्तृत्व से रहित होनेरूप अभोक्तृत्वशक्ति है।

सकलकर्मोपरमप्रवृत्तात्मप्रदेशनैष्क्यंद्यरूपा निष्क्रियत्वशक्तिः।

दोनों शक्तियों के उक्त स्वरूप पर दृष्टिपात करने से एक बात तो यह स्पष्ट होती है कि दोनों के स्वरूप में करणोपरम और अनुभवोपरम के अलावा कोई अन्तर नहीं है। अभोक्तृत्वशक्ति की परिभाषा में अकर्तृत्वशक्ति की परिभाषा से करणोपरम पद को निकाल कर उसके स्थान पर अनुभवोपरम पद रख दिया गया है।

तात्पर्य यह है कि ज्ञानभाव से भिन्न कर्मोदय से होनेवाले रागादि विकारी भावों के कर्तृत्व से रहित अकर्तृत्वशक्ति है और उन्हीं के भोक्तृत्व से रहित अभोक्तृत्वशक्ति है।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि अकर्तृत्वशक्ति के कारण आत्मा रागादि का अकर्ता है और अभोक्तृत्वशक्ति के कारण रागादि का अभोक्ता है।

इसप्रकार अकर्तृत्वशक्ति और अभोक्तृत्वशक्ति की चर्चा के उपरान्त अब निष्क्रियत्वशक्ति की चर्चा करते हैं —

२३. निष्क्रियत्वशक्ति

इस तेईसवीं निष्क्रियत्वशक्ति का स्वरूप आत्मख्याति में इसप्रकार दिया गया है —

निष्क्रियत्वशक्ति समस्त कर्मों के उपरम (अभाव) से प्रवर्तित होनेवाली आत्मप्रदेशों की निस्पन्दतास्वरूप है।

अकर्तृत्व और अभोक्तृत्व शक्तियों में मोहनीय कर्मोदयजन्य रागादि भावों के करने से उपरम (विराम-अभाव) और भोगने के उपरम (विराम-अभाव) की बात कही थी तो अब यहाँ निष्क्रियत्वशक्ति में सम्पूर्ण कर्मों के उपरम (विराम-अभाव) से होनेवाली आत्मप्रदेशों की अकंपदशा की बात कर रहे हैं। तात्पर्य यह है कि भगवान आत्मा कर्मोदयजन्य आत्मप्रदेशों के कंपनरूप योगों से भी रहित है, अकंपस्वभावी है, निष्क्रिय है।

यहाँ क्रिया शब्द का अर्थ न तो क्षेत्र से क्षेत्रान्तररूप गति से है और न काल से कालान्तररूप परिणमन से ही है; यहाँ तो आत्मा के प्रदेशों में होनेवाले कंपन का नाम ही क्रिया है। भगवान आत्मा ऐसी क्रिया से रहित है; अतः निष्क्रिय है, निष्क्रियत्वशक्ति से सम्पन्न है।

अकर्तृत्व और अभोक्तृत्वशक्ति में आत्मा को रागादिविभाव के अभावस्वरूप अमल बताया था और निष्क्रियत्वशक्ति में आत्मप्रदेशों की चंचलता के अभावरूप अचल बताया जा रहा है।

यह भगवान आत्मा अमल भी है और अचल भी है। पर्याय में घातिकर्मों के अभाव से पूर्ण अमलता प्रगट होती है और अघातिकर्मों के अभाव से अचलता प्रगट होती है। अरहंत भगवान पूर्णतः अमल हैं, पर अचल नहीं; किन्तु सिद्ध भगवान अमल भी हैं और अचल भी।

यह तो पर्याय में प्रगट अमलता और अचलता की बात है; किन्तु यहाँ तो यह कहा जा रहा है कि भगवान आत्मा का स्वभाव त्रिकाल अमल और अचल है।

जिसप्रकार की अकंपदशा सिद्ध भगवान में प्रगट हुई है; उसीप्रकार की अचलता आत्मा के स्वभाव में सदा विद्यमान है; क्योंकि उसमें निष्क्रियत्वशक्ति है। निष्क्रियत्वशक्ति का कार्य ही यह है कि वह आत्मा को सदा अचल रखे।

आसंसारसंहरणविस्तरणलक्षितकिंचिदूनचरमशरीरपरिमाणावस्थितलोकाकाशसम्मिता-
त्मावयवत्वलक्षणा नियतप्रदेशत्वशक्तिः।

सर्वशरीरैकस्वरूपात्मिकास्वधर्मव्यापकत्वशक्तिः।

इसप्रकार निष्क्रियत्वशक्ति के उपरान्त अब नियतप्रदेशत्वशक्ति की चर्चा करते हैं -

२४. नियतप्रदेशत्वशक्ति

इस चौबीसवीं नियतप्रदेशत्वशक्ति का स्वरूप आत्मख्याति में इसप्रकार व्यक्त किया गया है -

अनादिकाल से संसार-अवस्था में संकोच-विस्तार से लक्षित और सिद्ध-अवस्था में चरम शरीर से किंचित् न्यून परिमाण तथा लोकाकाश के प्रदेशों की संख्या के समान असंख्यात प्रदेशवाला आत्मा का अवयव है लक्षण जिसका, वह नियतप्रदेशत्वशक्ति है।

तात्पर्य यह है कि असंख्यातप्रदेशी लोकाकाश के जितने प्रदेश हैं; उतने ही असंख्यात प्रदेश इस भगवान् आत्मा में हैं। संसार-अवस्था में वे प्रदेश देहप्रमाण रहते हैं। जितनी देह हो, उतने ही आकार में आत्मा के प्रदेश समा जाते हैं। छोटी देह में संकुचित हो जाते हैं और बड़ी देह में फैल जाते हैं; पर रहते हैं देहप्रमाण ही तथा उनकी जो असंख्यात संख्या है, उसमें कोई कमी-वेशी नहीं होती। सिद्ध-अवस्था में देह छूट जाने पर अन्तिम देह के आकार में रहते हैं, पर अन्तिम देह से कुछ न्यून (कम) आकार में रहते हैं। आत्मा में जितने प्रदेश हैं, सदा उतने ही रहते हैं, कम-अधिक नहीं होते; विभिन्न आकारों में रहने पर भी वे सदा नियत ही हैं, जितने थे, उतने ही रहते हैं।

आत्मा के असंख्यप्रदेशों का उक्त कथनानुसार आकार रहना ही नियतप्रदेशत्वशक्ति का कार्य है।

नियतप्रदेशत्वशक्ति के विवेचन के उपरान्त अब स्वधर्मव्यापकत्वशक्ति का विवेचन करते हैं-

२५. स्वधर्मव्यापकत्वशक्ति

इस पच्चीसवीं स्वधर्मव्यापकत्वशक्ति का स्वरूप आत्मख्याति में इसप्रकार दिया गया है -

सभी शरीरों में एकरूप रहनेवाली स्वधर्मव्यापकत्वशक्ति है।

यह भगवान् आत्मा अपने धर्मों में ही व्याप्त होता है, शरीरादि में नहीं; क्योंकि इसमें स्वधर्मव्यापकत्व नाम की एक शक्ति है। इसके नाम से ही स्पष्ट है कि इसके कारण यह आत्मा स्वधर्मों में ही व्यापक होता है। यद्यपि यह आत्मा अनादिकाल से अबतक अनंत शरीरों में रहा है; तथापि यह उनमें कभी भी व्याप्त नहीं हुआ; शरीररूप न होकर सदा ज्ञानानन्दस्वभावी ही रहा है।

यह भगवान् आत्मा इस स्वधर्मव्यापकत्वशक्ति के कारण अपने अनंत गुणों में, धर्मों में, शक्तियों और निर्मलपर्यायों में तो व्यापता है; पर शरीरों और रागादि विकारी परिणामों में व्याप्त नहीं होता। रागादि होते हुए भी, शरीरों में रहता हुआ भी उसमें व्याप्त नहीं होता, स्वसीमा में ही रहता है।

स्वपरसमानासमानसमानासमानत्रिविधभावधारणात्मिका साधारणासाधारणसाधारणा साधारणधर्मत्वशक्तिः। विलक्षणानंतस्वभावभावितैकभावलक्षणा अनंतधर्मत्वशक्तिः।

इसप्रकार स्वधर्मव्यापकत्वशक्ति का निरूपण करने के उपरान्त अब साधारण-असाधारण-साधारणासाधारणधर्मत्वशक्ति का निरूपण करते हैं —

२६. साधारण-असाधारण-साधारणासाधारणधर्मत्वशक्ति

इस छब्बीसवीं साधारण-असाधारण-साधारणासाधारणधर्मत्वशक्ति का स्वरूप आत्मख्याति में इसप्रकार स्पष्ट किया गया है —

स्व और पर — दोनों में परस्पर समान, असमान और समानासमान — ऐसे तीन प्रकार के भावों के धारण करनेरूप यह साधारण-असाधारण-साधारणासाधारणधर्मत्वशक्ति है।

सामान्य गुणों को साधारण धर्म कहते हैं और विशेष गुणों को असाधारण धर्म कहते हैं और जिन धर्मों में सामान्यपना और विशेषपना — दोनों विशेषतायें प्राप्त हों; उन धर्मों को साधारणासाधारण धर्म कहते हैं।

सभी द्रव्यों में पाये जाने के कारण अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व आदि गुण या धर्म साधारण धर्म हैं। आत्मा से भिन्न पुद्गलादि पदार्थों में नहीं पाये जाने और केवल आत्मा में ही पाये जाने के कारण ज्ञान, दर्शन, सुखादि असाधारण धर्म हैं तथा मात्र पुद्गल में न पाये जानेवाला अमूर्तत्व पुद्गल का असाधारण धर्म और आत्मा, धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाश और काल द्रव्यों में पाये जाने के कारण वह साधारण धर्म भी है; इसप्रकार अमूर्तत्व साधारणासाधारण धर्म है।

अस्तित्वादि साधारण, ज्ञानादि असाधारण और अमूर्तत्वादि साधारणासाधारण धर्म भगवान् आत्मा में एकसाथ होने से यह आत्मा साधारण-असाधारण-साधारणासाधारणशक्ति से सम्पन्न है।

अस्तित्वादि गुण सभी द्रव्यों में पाये जाने के कारण साधारण, अकेले आत्मा में पाये जाने के कारण ज्ञानादि गुण असाधारण तथा सभी द्रव्यों में न पाये जाने और पाँच द्रव्यों में पाये जाने के कारण अमूर्तत्व साधारणासाधारण गुण है। इसप्रकार इस भगवान् आत्मा में साधारण-असाधारण-साधारणासाधारणधर्मत्वशक्ति है।

इसप्रकार साधारण-असाधारण-साधारणासाधारणधर्मत्वशक्ति का निरूपण करने के उपरान्त अब अनंतधर्मत्वशक्ति का निरूपण करते हैं —

२७. अनंतधर्मत्वशक्ति

इस सत्ताईसवीं अनंतधर्मत्वशक्ति का स्वरूप आत्मख्याति में इसप्रकार स्पष्ट किया गया है —

परस्पर भिन्न लक्षणोंवाले अनंत स्वभावों से भावित — ऐसा एक भाव है लक्षण जिसका — ऐसी अनंतधर्मत्वशक्ति है।

साधारण-असाधारण-साधारणासाधारणधर्मत्वशक्ति से यह बात तो स्पष्ट हो गई थी कि भगवान् आत्मा में साधारण, असाधारण और साधारण-असाधारण — ये तीनप्रकार के धर्म (गुण) पाये

तदतद्रूपमयत्वलक्षणा विरुद्धधर्मत्वशक्तिः। तद्रूपभवनरूपा तत्त्वशक्तिः। अतद्रूपभवनरूपा अतत्त्वशक्तिः।

जाते हैं; पर यह स्पष्ट नहीं हो रहा था कि वे धर्म हैं कितने ? अर्थात् इस एक आत्मा में कितने धर्मों को धारण करने की शक्ति है ? अतः अनंतधर्मत्वशक्ति में यह बताया जा रहा है कि इस भगवान् आत्मा में अनंत धर्मों को धारण करने की शक्ति है। विभिन्न लक्षणों के धारक, विभिन्न अनंतगुणों को धारण करने की शक्ति का नाम ही अनंतधर्मत्वशक्ति है।

अनंतधर्मत्वशक्ति के निरूपण के उपरान्त अब विरुद्धधर्मत्वशक्ति का निरूपण करते हैं—

२८. विरुद्धधर्मत्वशक्ति

इस अट्टाईसवीं विरुद्धधर्मत्वशक्ति का स्वरूप आत्मख्याति में इसप्रकार स्पष्ट किया गया है — तद्रूपमयता और अतद्रूपमयता जिसका लक्षण है, उस शक्ति का नाम विरुद्धधर्मत्वशक्ति है। अनंतधर्मत्वशक्ति में यह तो स्पष्ट हो गया था कि भिन्न-भिन्न लक्षणवाले अनंत धर्म आत्मा में रहते हैं; पर यह बात स्पष्ट नहीं हो पाई थी कि क्या परस्पर विरुद्धस्वभाववाले धर्म भी एकसाथ एक आत्मा में रह सकते हैं। यह विरुद्धधर्मत्वशक्ति यह बताती है कि न केवल अनंत धर्म हैं; किन्तु परस्पर विरोधी प्रतीत होनेवाले अनंतधर्मयुगल भी आत्मा में एकसाथ रहते हैं। विभिन्न लक्षणोंवाले अनंतगुणों को धारण करना अनंतधर्मत्वशक्ति का कार्य है और परस्पर विरुद्ध प्रतीत होनेवाले अनंत धर्मयुगलों को धारण करना विरुद्धधर्मत्वशक्ति का कार्य है।

इस विरुद्धधर्मत्वशक्ति में मात्र यही बताया गया है कि इस भगवान् आत्मा में न केवल विभिन्न लक्षणवाले गुण एकसाथ रहते हैं; अपितु यह भी स्पष्ट किया गया है कि परस्परविरुद्ध प्रतीत होनेवाले अनंत धर्म भी एकसाथ ही रहते हैं।

इसप्रकार विरुद्धधर्मत्वशक्ति के निरूपण के उपरान्त अब तत्त्वशक्ति और अतत्त्वशक्ति की चर्चा करते हैं—

२९-३०. तत्त्वशक्ति और अतत्त्वशक्ति

इन उनतीसवीं और तीसवीं तत्त्वशक्ति और अतत्त्वशक्ति का स्वरूप आत्मख्याति में इसप्रकार स्पष्ट किया गया है —

तद्भवनरूप तत्त्वशक्ति और अतद्भवनरूप अतत्त्वशक्ति है।

२५वीं स्वधर्मव्यापकत्वशक्ति में यह बताया गया था कि यह भगवान् आत्मा अपने सभी धर्मों (गुणों) में व्याप्त है। उसके बाद २६वीं शक्ति में यह बताया गया कि जिन धर्मों में आत्मा व्याप्त है; उन धर्मों में कुछ धर्म साधारण, कुछ धर्म असाधारण और कुछ साधारणासाधारण हैं। फिर २७ वीं अनंतधर्मत्वशक्ति में यह बताया गया है कि वे साधारण, असाधारण और साधारणासाधारण धर्म अनंत हैं। उसके बाद २८ वीं विरुद्धधर्मत्वशक्ति में कहा गया है कि उन अनंत धर्मों में कुछ धर्म परस्पर विरुद्ध प्रतीत होते हैं। ऐसे परस्पर विरोधी धर्मों को धारण करने की शक्ति इस भगवान् आत्मा में है, जिसका नाम है विरुद्धधर्मत्वशक्ति।

इन विरुद्ध धर्मों में तत् और अतत् धर्मों की चर्चा करते हुए इन तत्त्वशक्ति और अतत्त्वशक्ति में यह बताया जा रहा है कि इस भगवान आत्मा में जो भी धर्म हैं; उन सभी के होनेरूप तत्त्वशक्ति है और उनसे भिन्न पदार्थों और उन पदार्थों के धर्मों रूप नहीं होने की शक्ति का नाम अतत्त्वशक्ति है।

ये तत्त्व और अतत्त्व शक्तियाँ परस्पर विरुद्ध शक्तियाँ हैं। इसके भी आगे आनेवाली एकत्व-अनेकत्व और भाव-अभाव आदि शक्तियाँ भी परस्पर विरुद्ध शक्तियाँ हैं। इसप्रकार परस्पर विरुद्धधर्मत्वशक्ति के उपरान्त इन तत्त्व-अतत्त्व आदि परस्पर विरुद्ध शक्तियों का प्रतिपादन प्रसंगोचित ही है। इन परस्पर विरुद्ध शक्तियों के प्रतिपादन में एक क्रमिक विकास है। गहराई से देखने पर वह सहज ही ख्याल में आता है।

इसप्रकार यह भगवान आत्मा तत्त्वशक्ति के कारण स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भावमय है और निरन्तर परिणमित भी होता है तथा अतत्त्वशक्ति के कारण न तो परद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव रूप से है ही और न अनुरूप, उनकी पर्यायोरूप परिणमित ही होता है।

इसप्रकार स्वयं की अनंतशक्तियोंरूप होना तत्त्वशक्ति का कार्य है और पररूप नहीं होना अतत्त्वशक्ति का कार्य है। इसप्रकार तत्त्वशक्ति के कारण आत्मा ज्ञानादि गुणों रूप और उनके निर्मल परिणमन रूप है और अतत्त्वशक्ति के कारण रूपादि और रागादिरूप नहीं है।

तात्पर्य यह है कि स्वचतुष्टयरूप रहना और परचतुष्टयरूप नहीं होना इस आत्मा का सहज स्वभाव है और आत्मा के इस सहज स्वभाव का नाम ही तत्त्वशक्ति व अतत्त्वशक्ति है। स्व की अस्ति तत्त्वशक्ति का और पर की नास्ति अतत्त्वशक्ति का कार्य है। इन शक्तियों के ज्ञान-श्रद्धान से स्वरूप में रहने की चिन्ता और पररूप न हो जाने का भय समाप्त हो जाता है।

ध्यान रखने की विशेष बात यह है कि आरंभ में आनेवाली दृशि, ज्ञान, सुख, वीर्य आदि शक्तियाँ गुणरूप शक्तियाँ हैं और ये तत्त्व-अतत्त्व, एक-अनेक आदि शक्तियाँ धर्मरूप शक्तियाँ हैं।

परिशिष्ट के आरम्भिक अंश में ज्ञानमात्र आत्मा में अनेकान्तपना सिद्ध करते हुए जिन १४ भंगों की चर्चा की गई है; उन भंगों में चर्चित तत्-अतत्, एक-अनेक आदि धर्म ही यहाँ तत्त्व-अतत्त्व, एकत्व-अनेकत्व आदि शक्तियों के रूप में प्रस्तुत किये गये हैं।

वहाँ जो अनेकान्त की चर्चा की गई है, उसमें अनेकान्त शब्द की व्युत्पत्ति दो प्रकार से की गई है। पहली अनंत गुणों के समुदाय के रूप में और दूसरे परस्पर विरुद्ध प्रतीत होनेवाले धर्मयुगलों के रूप में। उसी को आधार बनाकर यहाँ पहले गुणरूप शक्तियों की चर्चा की गई और बाद में धर्मरूप शक्तियों पर प्रकाश डाला जा रहा है।

प्रश्न : क्या शक्तियाँ गुण और धर्मरूप ही होती हैं ?

उत्तर : गुण और धर्मों के अतिरिक्त कुछ शक्तियाँ स्वभाव रूप भी होती हैं। त्यागोपादानशून्यत्व जैसी शक्तियाँ स्वभावरूप हैं।

प्रश्न : त्यागोपादानशून्यत्व जैसी शक्तियाँ स्वभावरूप क्यों हैं ?

अनेकपर्यायव्यापकैकद्रव्यमयत्वरूपा एकत्वशक्तिः। एकद्रव्यव्याप्यानेकपर्यायमयत्वरूपा अनेकत्वशक्तिः।

उत्तर : क्योंकि त्यागोपादानशून्यत्व जैसी शक्तियों की न तो पर्यायें होती हैं और उनका कोई प्रतिपक्षी होता है। जिन शक्तियों की पर्यायें होती हैं और जिनका प्रतिपक्षी नहीं होता; वे गुणरूप शक्तियाँ हैं और जिनकी पर्यायें तो नहीं होतीं, पर प्रतिपक्षी अवश्य होता है, वे धर्मरूप शक्तियाँ हैं।

जिनकी न पर्यायें हों और न प्रतिपक्षी ही हों; वे स्वभावशक्तियाँ हैं। इस त्यागोपादानशून्यत्वशक्ति की न तो पर्यायें होती हैं और न कोई प्रतिपक्षी ही होता है; इसकारण वे स्वभावरूप शक्तियाँ हैं।

इनमें बस बात इतनी ही है कि भगवान आत्मा का ऐसा स्वभाव ही है कि वह न तो किसी से कुछ ग्रहण ही करता है और न किसी का त्याग ही करता है। इसप्रकार हम देखते हैं कि शक्तियों में गुण, धर्म और स्वभाव — सभी को समाहित कर लिया गया है।

इसप्रकार तत्त्वशक्ति और अतत्त्वशक्ति का निरूपण करने के उपरान्त अब एकत्वशक्ति और अनेकत्वशक्ति का निरूपण करते हैं —

३१-३२. एकत्वशक्ति और अनेकत्वशक्ति

इन इकतीस और बत्तीसवीं एकत्व और अनेकत्वशक्ति का स्वरूप आत्मख्याति में इसप्रकार स्पष्ट किया गया है —

अनेक पर्यायों में व्यापक और एकद्रव्यमयपने को प्राप्त एकत्वशक्ति है और एक द्रव्य से व्याप्त (व्यापने योग्य) अनेक पर्यायोंमय अनेकत्वशक्ति है।

इस भगवान आत्मा में एक ऐसी शक्ति है कि जिसके कारण यह भगवान आत्मा अपनी अनेक पर्यायों में व्याप्त होते हुए भी अपने एकत्व को नहीं छोड़ता। आत्मा के इसप्रकार के स्वभाव का नाम ही एकत्वशक्ति है।

इसीप्रकार इसमें एक शक्ति ऐसी भी है कि जिसके कारण यह भगवान आत्मा स्वयंरूप एक द्रव्य में व्याप्त रहने पर भी अनेक पर्यायरूप से परिणमित हो जाता है। आत्मा के इसप्रकार के सामर्थ्य का नाम अनेकत्वशक्ति है।

तात्पर्य यह है कि यह भगवान आत्मा एक रहकर भी अनेक पर्यायोंरूप परिणमित होने की शक्ति से सम्पन्न है तथा अनेक पर्यायोंरूप परिणमित होते हुए भी इसकी एकता भंग नहीं हो — ऐसी शक्ति से भी सम्पन्न है।

यद्यपि एकत्व और अनेकत्व भाव परस्पर विरोधी प्रतीत होते हैं; तथापि इस भगवान आत्मा में एकत्व और अनेकत्व — दोनों ही पाये जाते हैं। वह अनेक पर्यायों में परिणमित होते हुए भी एक ही रहता है और एक रहते हुए भी अनेक पर्यायों में परिणमन की सामर्थ्य रखता है; क्योंकि यह आत्मा अनेक पर्यायों में व्यापक एकद्रव्यमय है और एक द्रव्य में व्याप्त अनेकपर्यायमय भी है।

इस आत्मा की अनेक पर्यायों में व्यापक एकद्रव्यमयता एकत्वशक्ति है और एकद्रव्य में व्याप्त अनेकपर्यायमयता अनेकत्वशक्ति है।

३३. भूतावस्थत्वरूपा भावशक्तिः ३४. शून्यावस्थत्वरूपा अभावशक्तिः ३५. भवत्पर्याय-
व्ययरूपा भावाभावशक्तिः ३६. अभवत्पर्यायोदयरूपा अभावभावशक्तिः ३७. भवत्पर्याय-
यभवनरूपा भावभावशक्तिः ३८. अभवत्पर्यायाभवनरूपा अभावाभावशक्तिः।

इसप्रकार एकत्व और अनेकत्वशक्ति की चर्चा करने के उपरान्त अब भावशक्ति, अभावशक्ति, भावाभावशक्ति, अभावभावशक्ति, भावभावशक्ति और अभावाभावशक्ति — इन छह शक्तियों की चर्चा करते हैं —

३३-३८. भाव-अभावादि छह शक्तियाँ

३३ वीं भावशक्ति से ३८ वीं अभावाभावशक्ति तक इन छह शक्तियों का स्वरूप आत्मख्याति में इसप्रकार दिया गया है —

वर्तमान अवस्था से युक्त होनेरूप भावशक्ति, शून्य अवस्था से युक्त होने रूप अभावशक्ति, वर्तती पर्याय के व्ययरूप भावाभावशक्ति, पूर्व में न वर्तती पर्याय के उदयरूप अभावभावशक्ति, होने योग्य पर्याय के होने रूप भावभावशक्ति और नहीं होने योग्य पर्याय के नहीं होने रूप अभावाभावशक्ति है।

ये भाव-अभावादि शक्तियाँ भी सामान्यस्वभाव रूप होने से सभी (छह) द्रव्यों में पाई जाती हैं। इनके स्वरूप की सम्यक् जानकारी पर्यायों की क्रमबद्धता के निर्णय में भी अत्यन्त उपयोगी है।

‘क्रमबद्धपर्याय’ नामक मेरी कृति में इनका स्वरूप इसप्रकार स्पष्ट किया है—

“प्रत्येक द्रव्य में एक ऐसी शक्ति है, जिसके कारण द्रव्य अपनी वर्तमान अवस्था से युक्त होता है अर्थात् उसकी निश्चित अवस्था होती ही है; उसे भावशक्ति कहते हैं। प्रत्येक द्रव्य में एक ऐसी भी शक्ति होती है, जिसके कारण वर्तमान अवस्था के अतिरिक्त अन्य कोई अवस्था नहीं होती; इस शक्ति का नाम अभावशक्ति है। उक्त दोनों शक्तियों के कारण प्रत्येक द्रव्य की प्रतिसमय सुनिश्चित पर्याय ही होती है, अन्य नहीं।

प्रत्येक द्रव्य में एक ऐसी भी शक्ति है, जिसके कारण वर्तमान पर्याय का नियम से आगामी समय में अभाव हो जायेगा; उस शक्ति का नाम है भावाभावशक्ति तथा एक शक्ति ऐसी भी है, जिसके कारण आगामी समय में होनेवाली पर्याय नियम से उत्पन्न होगी ही। इस शक्ति का नाम है अभावभावशक्ति।

जो पर्याय जिस समय होनी है, वह पर्याय उस समय नियम से होगी ही, ऐसी भी एक शक्ति प्रत्येक द्रव्य में है, जिसका नाम है भावभावशक्ति तथा एक शक्ति ऐसी भी है कि जिसके कारण जो पर्याय जिस समय नहीं होनी है, वह नियम से नहीं होगी, उस शक्ति का नाम है अभावाभावशक्ति।

उक्त छह शक्तियों का स्वरूप यह सिद्ध करता है कि जिस द्रव्य की, जो पर्याय, जिस समय, अपने उपादान के अनुसार जैसी होनी होती है; वह स्वयं नियम से उसी समय, वैसी ही होती है; उसमें परपदार्थ की रंचमात्र भी अपेक्षा नहीं होती।”

सभी पदार्थों पर घटित होनेवाली इन भाव-अभावादि शक्तियों की चर्चा आत्मख्याति में आत्मा की विशिष्ट शक्तियों के संदर्भ में ही हुई है।

सैतालीस शक्तियों में आरंभिक गुण-शक्तियों की चर्चा में आत्मा के ज्ञानस्वभाव का स्वरूप स्पष्ट किया गया है। तात्पर्य यह है कि आत्मा स्व और पर दोनों को देखता-जानता है, दोनों उसके ज्ञान-दर्शन दर्पण में झलकते हैं; किसी को देखने-जानने के लिए उसे उन ज्ञेय पदार्थों के पास नहीं जाना पड़ता और न उन ज्ञेय पदार्थों को आत्मा के समीप ही आना पड़ता है। सहज ही ज्ञेय-ज्ञायक संबंध रहता है।

न केवल अपने आत्मा में स्व और पर को जानने की शक्ति है, अपितु परजीवों के ज्ञान का ज्ञेय बनने की भी शक्ति है। इसप्रकार यह आत्मा स्व और पर — दोनों को जानता है और स्व और पर — दोनों के द्वारा जाना भी जाता है। पर पदार्थों में थोड़े-बहुतों को ही नहीं; अपितु जगत के सम्पूर्ण पदार्थों को, उनके अनन्त गुणों को और उनकी अनंतानंत पर्यायों को एक समय में एक साथ जानने की सामर्थ्य इसमें है।

इसप्रकार आरंभिक शक्तियों में अपने आत्मा का ज्ञाता-दृष्टा स्वरूप स्पष्ट करने के उपरान्त आत्मा के प्रदेशों की स्थिति के संदर्भ में अनेक शक्तियों का विवेचन किया गया है। इसके बाद धर्म-शक्तियों के विवेचन में परस्पर विरुद्ध प्रतीत होनेवाले धर्मयुगलों की स्थिति पर प्रकाश डाला गया है और अब इन भाव-अभाव आदि स्वभावस्वरूप शक्तियों द्वारा यह स्पष्ट किया जा रहा है कि इस भगवान् आत्मा में प्रतिसमय जो भी परिणमन हो रहा है, उसे करने की पूरी सामर्थ्य उसके स्वभाव में ही विद्यमान है। इसके लिए उसे पर के सहयोग की रंचमात्र भी आवश्यकता नहीं है।

यदि किसी को यह आशंका हो कि आत्मा में जिस समय जो पर्याय होनी है, यदि वह उस समय नहीं हुई तो क्या होगा ? उक्त आशंका का यही समाधान है कि भगवान् आत्मा में भाव नाम की एक ऐसी शक्ति है, जिसके कारण जो पर्याय जिस समय होनी है, वह पर्याय उस समय होगी ही।

इसीप्रकार यदि यह आशंका हो कि जो पर्याय इस समय नहीं होनी है, यदि वह पर्याय हो गई तो क्या होगा ? इसका समाधान अभावशक्ति में है। अभावशक्ति के कारण जो पर्याय जिस समय नहीं होनी है, वह पर्याय उस समय नियम से नहीं होगी।

भावशक्ति का कार्य है कि विवक्षित पर्याय स्वसमय पर हो ही और अभावशक्ति का कार्य है कि अविवक्षित पर्याय उस समय किसी भी स्थिति में न हो।

अब प्रश्न उपस्थित होता है यदि विद्यमान पर्याय का अगले समय में अभाव ही न हो तो फिर नई पर्याय कैसे होगी ? आचार्य कहते हैं कि आत्मा में भावाभाव नाम की एक शक्ति ऐसी भी है कि जिसके कारण विद्यमान पर्याय का अगले समय में नियम से अभाव होगा ही।

इसीप्रकार यदि यह प्रश्न हो कि यदि अगले समय में जो पर्याय आनी थी, यदि वह पर्याय अगले समय नहीं आई तो क्या होगा ? आचार्य कहते हैं कि अभाव-भाव नाम की एक ऐसी शक्ति है कि जिसके कारण अगले समय में होनेवाली पर्याय अगले समय में गारंटी से होगी ही।

कारकानुगतक्रियानिष्क्रान्तभवनमात्रमयी भावशक्तिः। कारकानुगतभवत्तारूपभावमयी क्रियाशक्तिः।

जो पर्याय होनी है, वह न होकर कोई अन्य पर्याय हो जाये और जिस पर्याय का अभाव होना है, उसका अभाव न हो तो क्या होगा ? आत्मा में भावभाव और अभाव-अभाव नाम की ऐसी शक्तियाँ हैं कि जिनके कारण जो पर्याय होनी हो, वही होती है और जो नहीं होनी हो, वह नहीं होती।

इसप्रकार उक्त छह शक्तियों के स्वरूप को सही रूप में समझ लेने से यह आशंका समाप्त हो जाती है कि कोई कार्य समय पर नहीं हुआ तो क्या होगा?

इन शक्तियों के नामों से ही इनका स्वरूप स्पष्ट हो रहा है। भाव शब्द का अर्थ होता है — होना। अतः जिस समय जो पर्याय होनी हो, उस समय उस पर्याय का नियमरूप से होना ही भावशक्ति का कार्य है। इसीप्रकार अभाव शब्द का अर्थ होता है - नहीं होना। अतः जिस समय जिस पर्याय का नहीं होना निश्चित हो; उस पर्याय का उस समय नहीं होना ही अभावशक्ति का कार्य है।

इसीप्रकार भावाभाव अर्थात् भाव का अभाव। जो पर्याय अभी विद्यमान है, उसका अगले समय में निश्चितरूप से अभाव हो जाना ही भाव-अभावशक्ति है और अभावभाव अर्थात् अभाव का भाव होना। जो पर्याय अभी नहीं है और अगले समय में नियम से होनेवाली है; उस अभावरूप पर्याय का भावरूप होना ही अभावभावशक्ति का कार्य है।

भावभाव अर्थात् भाव का भाव और अभाव-अभाव अर्थात् अभाव का अभाव। तात्पर्य यह है कि जो पर्याय होनेवाली है, उसी पर्याय का होना अन्य का नहीं होना भावभावशक्ति का कार्य है और जो पर्याय होनेवाली नहीं है अथवा जिसका अभाव सुनिश्चित है; उस पर्याय का नहीं होना अभाव-अभावशक्ति का कार्य है।

उक्त भावादि छह शक्तियों की चर्चा के उपरान्त अब ३९वीं भावशक्ति और ४०वीं क्रियाशक्ति की चर्चा करते हैं —

३९-४०. भावशक्ति और क्रियाशक्ति

इन भावशक्ति और क्रियाशक्ति का स्वरूप आत्मख्याति में इसप्रकार स्पष्ट किया गया है —

कारकों के अनुसार होनेवाली क्रिया से रहित भवनमात्रमयी भावशक्ति है और कारकों के अनुसार परिणमित होनेरूप भावमयी क्रियाशक्ति है।

देखो, यह भावशक्ति कारकों के अनुसार होनेवाली क्रिया से रहित मात्र होनेरूप है और क्रियाशक्ति कारकों के अनुसार परिणमित होनेरूप है।

भावशक्ति यह बताती है कि आत्मा रागादि विकारी भावों के षट्कारकों से रहित है और क्रियाशक्ति यह बतलाती है कि सम्यग्दर्शनादि निर्मल पर्यायों के षट्कारकों से सहित है।

३३वीं शक्ति का नाम भी भावशक्ति है और इस ३९वीं शक्ति का नाम भी भावशक्ति ही है; नाम एक-सा होने पर भी दोनों में मूलभूत अन्तर यह है कि ३३वीं भावशक्ति में यह कहा था कि प्रत्येक द्रव्य अपनी सुनिश्चित वर्तमान पर्याय से युक्त होता ही है और इस ३९वीं भावशक्ति में यह बताया जा रहा है कि यह भगवान् आत्मा कारकों की क्रिया से निरपेक्ष है।

भावादि छह शक्तियों के विवेचन से यह स्पष्ट हुआ था कि प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय पर की अपेक्षा बिना स्वयं की योग्यता से स्वसमय में प्रगट होती ही है; इसप्रकार वह परकारकों से निरपेक्ष है। और अब इस ३९वीं भावशक्ति में प्रत्येक समय की प्रत्येक पर्याय को अभिन्न षट्कारकों से भी निरपेक्ष बताया जा रहा है। ध्यान रहे, यह अभिन्न षट्कारकों से निरपेक्षता विकारी पर्याय संबंधी ही ग्रहण करना; क्योंकि सम्यग्दर्शनादि निर्मल पर्यायों से सापेक्षता अगली क्रियाशक्ति में स्पष्ट की जायेगी।

यद्यपि ३९वीं शक्ति में विकारी-अविकारी पर्याय संबंधी कोई उल्लेख नहीं है; सामान्यरूप से ही अभिन्न षट्कारकों से निरपेक्षता का कथन है; तथापि ४०वीं शक्ति में निर्मलपर्याय संबंधी अभिन्न षट्कारकों की सापेक्षता का कथन होने से यह सहज ही फलित हो जाता है कि ३९वीं शक्ति में विकारी पर्यायों की निरपेक्षता ही समझना चाहिए।

इसप्रकार इन भावादि शक्तियों में पर से निरपेक्षता और विकारी पर्यायों से निरपेक्षता बताकर निर्मल पर्यायों संबंधी षट्कारकों की सापेक्षता का निरूपण है।

इसके बाद षट्कारकों संबंधी कर्मशक्ति, कर्ताशक्ति, करणशक्ति, सम्प्रदानशक्ति, अपादानशक्ति और अधिकरणशक्ति — इन छह शक्तियों का निरूपण होगा और उसके बाद संबंधशक्ति की चर्चा करेंगे। इसप्रकार हम देखते हैं कि भाव-अभावादि छह शक्तियों में पर के साथ कारकता का निषेध और इस भावशक्ति में विकार के साथ कारकता का निषेध करके क्रियाशक्ति में निर्मल परिणमन के साथ कारकता का संबंध स्वीकार कर उसका स्वरूप स्पष्ट किया गया है।

तात्पर्य यह है कि यह भगवान् आत्मा न तो पर का और न रागादि भावों का कर्ता है और न पर और रागादि भावों का कर्म ही है; इसीप्रकार उनका करण भी नहीं है, सम्प्रदान भी नहीं है, अपादान भी नहीं है और अधिकरण भी नहीं है। तात्पर्य यह है कि इस भगवान् आत्मा का पर व रागादि के साथ किसी भी प्रकार का कोई भी संबंध नहीं है।

इसीप्रकार ये परपदार्थ व विकारी भाव भी आत्मा के कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण नहीं हैं और न इनका आत्मा के साथ कोई संबंध ही है।

आत्मोन्मुखी निर्मल परिणमन के साथ आत्मा का उक्त कारकों रूप निर्विकल्प संबंध अवश्य है।

उक्त भावशक्ति और क्रियाशक्ति के प्रकरण में कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण संबंधी कारकों की चर्चा बार-बार आई है; अतः अब आगे उक्त षट्कारकों संबंधी छह शक्तियों की चर्चा की जा रही है और अन्त में इसका कोई संबंधी है भी या नहीं? यदि है तो कौन है — इस बात का निर्णय करने के लिए संबंधशक्ति की चर्चा करेंगे।

प्राप्यमाणसिद्धरूपभावमयी कर्मशक्तिः। भवत्तारूपसिद्धरूपभावभावकत्वमयी कर्तृत्व-शक्तिः।

४१-४२. कर्मशक्ति और कर्तृत्वशक्ति

४१वीं कर्मशक्ति और ४२वीं कर्तृत्वशक्ति को आत्मख्याति में इसप्रकार स्पष्ट किया गया है — कर्मशक्ति प्राप्यमाणसिद्धरूपभावमयी है और कर्तृत्वशक्ति होनेरूप और सिद्धरूप भाव के भावकत्वमयी है।

भगवान् आत्मा में जीवत्वादि अनंत शक्तियों में एक कर्म नाम की शक्ति भी है और एक कर्तृत्व नाम की शक्ति भी है। इन शक्तियों के कारण ही यह भगवान् आत्मा अपने सम्यग्दर्शनादि निर्मल परिणामों को प्राप्त करता है और उन्हें करता भी है। कर्मशक्ति के कारण प्राप्त करता है और कर्तृत्वशक्ति के कारण उन्हें करता है।

यह भगवान् आत्मा न तो पर को प्राप्त करता है और न पर का कर्ता ही है। इसीप्रकार रागादि-विकारी भावों को प्राप्त करे या करे — ऐसी भी कोई शक्ति आत्मा में नहीं है। हाँ, अपने सम्यग्दर्शनादि निर्मल परिणामों को प्राप्त करने और करने की शक्ति इसमें अवश्य है।

निर्मल परिणामों को करने की शक्ति का नाम कर्तृत्वशक्ति है और इन्हें प्राप्त करने की शक्ति का नाम कर्मशक्ति है। तात्पर्य यह है कि अपने निर्मल परिणामों को करने या प्राप्त करने के लिए इस भगवान् आत्मा को पर की ओर झाँकने की कोई आवश्यकता नहीं है।

यहाँ कर्म शब्द का प्रयोग न तो ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्मों के अर्थ में हुआ है और न रागादि भावकर्मों के अर्थ में ही हुआ है तथा कर्म शब्द का अर्थ निर्मल परिणमनरूप कार्य भी नहीं है।

यहाँ कर्म शब्द का प्रयोग आत्मा की अनादि-अनंत शक्तियों में अथवा यहाँ प्रतिपादित ४७ शक्तियों में से एक कर्म नामक शक्ति के अर्थ में है अथवा कर्ता, कर्म, करण आदि कारकों में समागत कर्म के अर्थ में है। ४०वीं कर्तृत्वशक्ति में आत्मा अपने निर्मल परिणामों का कर्ता है — यह बताया गया है और २१वीं अकर्तृत्वशक्ति में आत्मा रागादि विकारी भावों का अकर्ता है — यह बताया गया था।

इसप्रकार इन दोनों शक्तियों के विवेचन में यह स्पष्ट किया गया है कि इस भगवान् आत्मा में एक कर्म नाम की शक्ति ऐसी है कि जिसके कारण यह आत्मा स्वयं के निर्मल परिणामों को प्राप्त करता है और एक कर्तृत्व नाम की शक्ति ऐसी भी है कि जिसके कारण यह आत्मा स्वयं के निर्मल परिणामों को करे अथवा उनका कर्तृत्व धारण करे।

स्वयं ही कर्ता और स्वयं ही कर्म — इसप्रकार कर्ता-कर्म का अनन्यपना है। तात्पर्य यह है कि इस भगवान् आत्मा को न तो कुछ करने के लिए अन्यत्र जाना है और न कुछ पाने के लिए पर की ओर दौड़ना है। सब कुछ अपने अन्दर ही है।

भवद्भावभवनसाधकतमत्वमयी करणशक्तिः। स्वयं दीयमानभावोपेयत्वमयी सम्प्रदान-शक्तिः। उत्पादव्ययालिङ्गितभावापायनिरपायध्रुवत्वमयी अपादानशक्तिः।

कर्मशक्ति और कर्तृत्वशक्ति के निरूपण के उपरान्त अब करणशक्ति की चर्चा करते हैं —

४३. करणशक्ति

४३वीं करणशक्ति का स्वरूप आत्मख्याति में इसप्रकार स्पष्ट किया गया है —

करणशक्ति प्रवर्तमान भाव के होने में साधकतममयी है।

इस भगवान आत्मा में कर्मशक्ति और कर्तृत्वशक्ति के समान एक करण नामक शक्ति भी है; जिसके कारण यह भगवान आत्मा सम्यग्दर्शनादि निर्मल पर्यायों को प्रगट करता है, कर सकता है।

कर्तृत्वशक्ति के कारण आत्मा अपने निर्मल भावों का कर्ता है, कर्मशक्ति के कारण निर्मल परिणामों को प्राप्त करता है और करणशक्ति के कारण वह निर्मल परिणामों का स्वयं कारण भी है। कर्ता भी स्वयं, कर्म भी स्वयं और करण भी स्वयं — इसप्रकार निर्मल पर्यायों के प्रगट करने में वह पूर्णतः स्वाधीन है। सम्यग्दर्शनादि निर्मल भावों के लिए उसे अन्य की ओर देखने की आवश्यकता नहीं है; क्योंकि निर्मल पर्यायों को प्रगट करने की पूर्ण सामर्थ्य इन कारक संबंधी छह शक्तियों के माध्यम से उसमें ही विद्यमान है।

आत्मा की अनंत स्वतंत्रता की घोषक ये शक्तियाँ आत्मा की अपनी निधियाँ हैं।

उक्त विश्लेषण का तात्पर्य यह है कि सम्यग्दर्शन से लेकर सिद्धदशा तक की समस्त निर्मल पर्यायों को प्राप्त करने का साधन इस शक्ति के माध्यम से यह आत्मा स्वयं ही है; न तो परपदार्थरूप निमित्त साधन हैं और न शुभरागरूप नैमित्तिक भाव ही साधन हैं। अतः आत्मा का साधना के लिए, अनंत अतीन्द्रिय आनन्द प्राप्त करने के लिए न तो दीनता से पर की ओर देखने की आवश्यकता है और न शुभभावों में धर्म मानकर उनमें उपादेयबुद्धि रखकर उन्हें करने की आवश्यकता है।

तात्पर्य यह है कि यह भगवान आत्मा न तो पर का कर्ता है, न कर्म और न करण (साधन) ही है तथा परपदार्थ भी इस भगवान आत्मा के कर्ता, कर्म और करण नहीं हैं। इसप्रकार न तो इसके माथे पर पर के कर्तृत्व का भार ही है और न पर से कुछ अपेक्षा ही है।

इसप्रकार करणशक्ति की चर्चा करने के उपरान्त अब सम्प्रदानशक्ति और अपादानशक्ति की चर्चा करते हैं —

४४-४५. सम्प्रदानशक्ति और अपादानशक्ति

इस ४४वीं सम्प्रदानशक्ति और ४५वीं अपादानशक्ति का स्वरूप आत्मख्याति में इसप्रकार स्पष्ट किया गया है —

सम्प्रदानशक्ति अपने द्वारा दिये जानेवाले भाव की उपेयत्वमयी है और अपादानशक्ति उत्पाद-व्यय से आलिङ्गित भाव से नाश होने से हानि को प्राप्त न होनेवाली ध्रुवत्वमयी है।

यहाँ कारक संबंधी छह शक्तियों की चर्चा चल रही है। सामान्यतः छह कारकों का स्वरूप इसप्रकार है — जो कार्य को करता है, वह कर्ता नामक कारक है और जो कार्य है, वह कर्मकारक है। जिसके द्वारा कार्य हो, वह साधन करण कारक कहा जाता है। कार्य का लाभ जिसे प्राप्त हो, वह सम्प्रदान कारक है और कार्य जिसमें से उत्पन्न हो, वह अपादान कारक कहा जाता है तथा कार्य के आधार को अधिकरण कारक कहते हैं।

यह तो सर्वविदित ही है कि इन शक्तियों के प्रकरण में निर्मलपर्यायरूप क्रिया को शामिल किया जाता है। अतः अब प्रश्न यह है कि सम्यग्दर्शनादि निर्मल पर्यायों का कर्ता कौन है, कर्म कौन है, उन्हें प्राप्त करने का साधन क्या है, वे निर्मल पर्यायें प्राप्त किसको होंगी, वे कहाँ से आयेंगी और उनका आधार कौन है ?

कर्ताशक्ति में यह बताया गया है कि उनका कर्ता यह भगवान आत्मा स्वयं है; क्योंकि इसमें एक कर्ता नाम का गुण (शक्ति) है; जिसके कारण यह आत्मा स्वयं ही उक्त निर्मलपर्यायरूप परिणमित होता है। कर्मशक्ति में यह स्पष्ट किया गया है कि आत्मा का निर्मल परिणाम ही आत्मा का कर्म है।

करणशक्ति में यह स्पष्ट किया गया है कि आत्मा को सम्यग्दर्शन आदि निर्मल पर्यायों की प्राप्ति के लिए अन्य साधनों की अपेक्षा नहीं है; क्योंकि आत्मा में एक करण नामक गुण (शक्ति) है, जिसके द्वारा आत्मा उन्हें प्राप्त करता है, कर सकता है।

अब सम्प्रदानशक्ति और अपादानशक्ति में यह बताया जा रहा है कि उक्त निर्मल पर्यायें आत्मा के लिए हैं, आत्मा को प्राप्त होती हैं और आत्मा में से प्रगट होती हैं। अपादानशक्ति के कारण आत्मा में से ही प्रगट होती हैं और सम्प्रदानशक्ति के कारण आत्मा के लिए ही हैं।

सम्यग्दर्शनादि निर्मल पर्यायें आत्मा के लिए आत्मा में से प्रगट होकर स्वयं आत्मा को ही प्राप्त होती हैं — ऐसी अद्भुत वस्तुस्थिति है।

उक्त दोनों शक्तियों के स्पष्टीकरण में यह बताया गया है कि आत्मा का ज्ञान, आनन्द आत्मा में से ही आता है और आत्मा को ही दिया जाता है। दातार भी आत्मा और दान को ग्रहण करनेवाला भी आत्मा। ज्ञान और आनन्द न तो पर में से आते हैं और न पर को दिये ही जाते हैं। इसीप्रकार यह आत्मा न तो इन ज्ञान और आनन्द को पर से ग्रहण करता है और न ही पर को दे ही सकता है। जो कुछ भी इसका लेना-देना होता है, वह सब अपने अन्दर ही होता है, अन्तर में ही होता है। इन ज्ञान और आनन्द का पर से कुछ भी लेना-देना नहीं है। इन दोनों शक्तियों के कारण यह भगवान आत्मा अनन्तकाल तक स्वयं ही स्वयं को आनन्द देता रहेगा और स्वयं ही आनन्द लेता भी रहेगा। यह लेन-देन कभी समाप्त नहीं होनेवाली अद्भुत क्रिया है, प्रक्रिया है।

इसप्रकार इन सम्प्रदान और अपादान शक्तियों की चर्चा के उपरान्त अब अधिकरणशक्ति का निरूपण करते हैं—

भाव्यमानभावाधारत्वमयी अधिकरणशक्तिः।

४६. अधिकरणशक्ति

इस ४६वीं अधिकरणशक्ति की चर्चा आत्मख्याति में इसप्रकार की गई है —

अधिकरणशक्ति आत्मा में भाव्यमानभाव के आधारपनेरूप है।

इस अधिकरणशक्ति के कारण भगवान आत्मा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप धर्म का आधार है।

निज भगवान आत्मा के आधार से ही सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप निर्मलभावों की प्राप्ति होती है और ये भाव आत्मा के आधार से ही टिकते हैं।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की उत्पत्ति और वृद्धि मोक्षमार्ग है और इन्हीं की पूर्णता मोक्ष है। अधिकरणशक्ति के कारण मोक्ष और मोक्षमार्ग की पर्यायें बिना किसी परपदार्थ और बिना किसी शुभभाव के आधार से आत्मा के आश्रय से आत्मा में सहज ही प्रगट होती हैं।

तात्पर्य यह है कि अनंत सुख-शान्ति प्रदान करनेवाला रत्नत्रयधर्म न तो उपवासादि क्रियाकाण्ड से प्राप्त होता है और न उत्कृष्ट से उत्कृष्ट शुभभाव से प्राप्त होता है; किन्तु अपने अनंत शक्तियों के संग्रहालय भगवान आत्मा के आश्रय से होता है; आत्मा के ज्ञान से होता है, श्रद्धान से होता है, ध्यान से होता है।

उक्त सम्पूर्ण कथन का सार यह है कि यह भगवान आत्मा स्वयं के आधार पर प्रतिष्ठित है; इसे अन्य आकाशादि पदार्थों के आधार की आवश्यकता नहीं है। न केवल आत्मद्रव्य स्वयं के आधार पर है; अपितु उसका स्वाभाविक परिणमन, निर्मल परिणमन भी पूर्णतः स्वयं के आधार पर ही प्रतिष्ठित है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र संबंधी निर्मल परिणमन का भी एकमात्र आत्मा ही आधार है; क्योंकि उसमें अधिकरण नामक एक ऐसी शक्ति है कि जिसके कारण यह सब कुछ सहज ही होता है, स्वाधीनपने ही होता है।

प्रश्न : शास्त्रों में तो छहों द्रव्यों का आधार आकाश को कहा है और आत्मा भी एक द्रव्य है; अतः उसका आधार भी आकाश ही होना चाहिए ?

उत्तर : आकाश को सभी द्रव्यों का आधार कथन निमित्त की अपेक्षा से किया गया कथन है; अतः असद्भूतव्यवहारनय का उपचरित कथन है। यहाँ निश्चयनय की अपेक्षा परमसत्य का प्रतिपादन है; उपादान की अपेक्षा प्रतिपादन है।

व्यवहार से भिन्न षट्कारक की भी चर्चा आती है; पर वह सभी कथन असद्भूत होता है, उपचरित होता है, असत्यार्थ होता है।

यहाँ अभिन्नषट्कारक की चर्चा चल रही है। अतः परमसत्य यही है कि आत्मा अपनी अधिकरणशक्ति के कारण स्वयं प्रतिष्ठित है, उसके परिणमन में भी स्वयं का ही आधार है।

इसप्रकार अधिकरणशक्ति का निरूपण करने के उपरान्त अब संबंधशक्ति की चर्चा करते हैं—

स्वभावमात्रस्वस्वामित्वमयी संबंधशक्तिः।

४७. सम्बन्धशक्ति

४७वीं सम्बन्धशक्ति का स्वरूप आत्मख्याति में इसप्रकार स्पष्ट किया गया है —

अपना स्वभाव ही अपना स्वामी है — ऐसी स्वस्वामित्वमयी संबंधशक्ति है।

अध्यात्म में कारक छह होते हैं और व्याकरण के अनुसार विभक्तियाँ सात होती हैं। इनमें संबोधन को जोड़कर लोक में आठ विभक्तियों या आठ कारकों की भी चर्चा होती है।

जो क्रिया के प्रति उत्तरदायी हो, जिसका क्रिया के साथ सीधा संबंध हो, उसे कारक कहते हैं। संबोधन का क्रिया के साथ कोई संबंध नहीं है; इसकारण उसे न तो कारकों में और न विभक्तियों में ही गिना जा सकता है।

संबंध का भी कोई सीधा संबंध क्रिया से नहीं होता और न वह क्रिया के प्रति उत्तरदायी ही है; अतः संबंध को भी कारक नहीं कहा जा सकता; फिर भी विभक्तियों में तो उसे शामिल किया ही गया है। अतः यहाँ भी शक्तियों के रूप में संबंध की चर्चा है। इतना विशेष है कि षट्कारकों संबंधी शक्तियों में तो कर्ता-कर्म संबंधी चर्चा है और इस संबंधशक्ति में स्व-स्वामी संबंध की बात कही गई है। इस संबंधशक्ति में यह बताया गया है कि इस भगवान आत्मा का स्वामी कोई अन्य नहीं, यह स्वयं ही है। यही स्व और यही स्वामी — ऐसा ही अनन्य स्व-स्वामी संबंध है। यह भी स्पष्ट ही है कि न तो इसका कोई अन्य पदार्थ स्वामी है और न यह भी किसी अन्य पदार्थ का स्वामी है।

स्वयं की निर्मल पर्याय आत्मा की सम्पत्ति है और यह भगवान आत्मा ही इसका स्वामी है।

इसप्रकार यह शक्ति आत्मा के एकत्व-विभक्त स्वरूप को बतलाती है। इस संबंधशक्ति के माध्यम से भगवान आत्मा का पर के साथ किसी भी प्रकार का कोई संबंध नहीं है — यह निश्चित हो जाता है। इसप्रकार इस संबंधशक्ति में यह बताया गया है कि अनंत शक्तियों में एक संबंध नाम की शक्ति भी है कि जिसके कारण यह आत्मा किसी भी परपदार्थ का न तो स्वामी है और न ही कोई पर पदार्थ ही भगवान आत्मा का स्वामी है। तात्पर्य यह है कि न तो इसके माथे पर के स्वामित्व का भार है और न अन्य की पराधीनता ही है।

प्रश्न : संबंध तो भिन्न-भिन्न द्रव्यों के बीच होता है। अतः मैं ही स्व और मैं ही स्वामी — यह कैसे हो सकता है ? जब दोनों स्वयं ही हैं तो फिर इसे संबंध कहने से क्या साध्य है ?

उत्तर : अरे भाई ! यह संबंधशक्ति यह स्पष्ट करने के लिए कही गई है कि आत्मा का पर के साथ कोई संबंध नहीं है। यह आत्मा पर से संबंधित न हो, अपने में ही सीमित रहे — यही कार्य है इस संबंधशक्ति का। मैं ही स्व और मैं ही स्वामी' — यह भी कथनमात्र ही है; क्योंकि मैं तो मैं ही हूँ, उसमें सम्पत्ति और स्वामी का विकल्प भी कथनमात्र है।

यह संबंधशक्ति पर के साथ संबंध बताने के लिए नहीं कही गई; अपितु पर के साथ सभीप्रकार के सभी संबंधों के निषेध के लिए कही गई है। पर से संबंध के निषेध पर बल देने के लिए स्वयं में ही स्व-स्वामी संबंध बताया गया है।

(वसंततिलका)

इत्याद्यनेक-निजशक्ति-सुनिर्भरोऽपि
यो ज्ञानमात्रमयतां न जहाति भावः।

एवं क्रमाक्रमविवर्तिविवर्तचित्रं

तद्द्रव्यपर्ययमयं चिदिहास्ति वस्तु॥२६४॥

यहाँ यह समझना चाहिए कि मैं ही स्वामी और मैं ही स्व (सम्पत्ति) – इसका आशय यही है कि यहाँ स्व-स्वामी संबंध की कोई गुंजाइश नहीं है। इसी बात पर बल देने के लिए कि मेरा कोई स्वामी नहीं है, मैं किसी की सम्पत्ति नहीं हूँ और मैं भी किसी का स्वामी नहीं हूँ और कोई मेरी सम्पत्ति नहीं है; इसलिए यह कहा गया है कि मैं ही स्वामी और मैं ही स्व (सम्पत्ति)।

यह न केवल संबंधशक्ति के बारे में समझना; अपितु सभी कारकों संबंधी शक्तियों के बारे में समझना चाहिए; क्योंकि मैं ही कर्ता, मैं ही कर्म, मैं ही करण, मैं ही संप्रदान, मैं ही अपादान और मैं ही अधिकरण – इसका भी यही अर्थ हो सकता है कि मेरा कर्ता कोई अन्य नहीं, मेरा कर्म भी अन्य कोई नहीं। इसीप्रकार करणादि कारकों पर भी घटित कर लेना चाहिए।

अन्त में यही निष्कर्ष रहा कि मैं तो मैं ही हूँ, षट्कारक की प्रक्रिया से पार स्वयं में परिपूर्ण स्वतंत्र पदार्थ। यही कारण है कि इन शक्तियों के आत्मा में विद्यमान होने पर भी इनके लक्ष्य से निर्मल पर्याय प्रगट नहीं होती; अपितु इन शक्तियों के संग्रहालय अभेद-अखण्ड त्रिकाली ध्रुव भगवान् आत्मा के आश्रय से ही सम्यग्दर्शनादि निर्मल पर्यायों का आरंभ होता है।

इसप्रकार संबंधशक्ति की चर्चा के साथ-साथ ४७ शक्तियों की चर्चा भी समाप्त होती है। उक्त ४७ शक्तियों की चर्चा में दृष्टि के विषयभूत अनंत शक्तियों के संग्रहालय भगवान् आत्मा का स्वरूप तो स्पष्ट हुआ ही है; साथ में उछलती हुई शक्तियों की बात कहकर; शक्तियों के उछलने की चर्चा करके, निर्मलपर्यायरूप से परिणमित होने की बात करके द्रव्यार्थिकनय के विषयभूत द्रव्य की चर्चा के साथ-साथ पर्यायार्थिकनय के विषयभूत निर्मल परिणमन को भी स्वयं में समेट लिया है।

इसप्रकार इस स्याद्वादाधिकार में द्रव्य-पर्यायात्मक अनेकान्तस्वरूप आत्मवस्तु को स्याद्वाद शैली में स्पष्ट किया गया है।

इसप्रकार ४७ शक्तियों की चर्चा करने के तत्काल बाद आचार्यदेव दो छन्दों में इस प्रकरण का उपसंहार करते हैं, जिनका पद्यानुवाद इसप्रकार है –

(रोला)

इत्यादिक अनेक शक्ति से भरी हुई है।

फिर भी ज्ञानमात्रमयता को नहीं छोड़ती॥

और क्रमाक्रमभावों से जो मेचक होकर।

द्रव्य और पर्यायमयी चिद्वस्तु लोक में॥२६४॥

(वसंततिलका)

नैकांतसंगतदृशा स्वयमेव वस्तु-
तत्त्वव्यवस्थितिमिति प्रविलोकयन्तः।
स्याद्वादशुद्धिमधिकामधिगम्य संतो
ज्ञानी भवंति जिननीतिमलंघयन्तः॥२६५॥

(रोला)

अनेकान्त की दिव्यदृष्टि से स्वयं देखते।
वस्तुतत्त्व की उक्त व्यवस्था अरे सन्तजन॥
स्याद्वाद की अधिकाधिक शुद्धि को लख अर।

नहीं लाँघकर जिननीति को ज्ञानी होते॥२६५॥

इस लोक में स्वयं की जीवत्वादि अनेक शक्तियों से पूर्णतः परिपूर्ण होने पर भी जो भाव (आत्मा) ज्ञानमात्रता को नहीं छोड़ता; वह भाव (आत्मा) पूर्वोक्त प्रकार से क्रमरूप और अक्रमरूप विद्यमान होने से अनेकाकार द्रव्य-पर्यायमय चेतन वस्तु है।

अनेकान्तसंगत दृष्टि के द्वारा अनेकान्तात्मक वस्तुतत्त्व की व्यवस्था को स्वयमेव देखते हुए स्याद्वाद की अत्यधिक शुद्धि को जानकर जिनवरदेव की नीति का उल्लंघन न करते हुए सत्पुरुष ज्ञानी (ज्ञानस्वरूप) होते हैं।

उक्त छन्दों में आचार्यदेव यही कहना चाहते हैं कि यह भगवान आत्मा अक्रमवर्ती गुणों और क्रमवर्ती पर्यायों तथा जीवत्वादि अनंत शक्तियों का संग्रहालय द्रव्य-पर्यायात्मक चैतन्यवस्तु है। यह चैतन्यवस्तु अनंत गुणात्मक और उनके निर्मल परिणमन से संयुक्त होने पर भी अपने ज्ञानमात्रपने को नहीं छोड़ती, अपने जाननस्वभाव को नहीं छोड़ती।

उक्त अनेकान्तात्मक ज्ञानमात्र आत्मवस्तु और उसकी परिणमन व्यवस्था का स्वरूप भलीभाँति जानकर ज्ञानीजन स्याद्वादमयी जिननीति को, जिनेन्द्रभगवान कथित नीति को नहीं छोड़ते।

तात्पर्य यह है कि हमें स्याद्वादमयी जिननीति का अनुसरण करते हुए अनेकान्तात्मक ज्ञानमात्र आत्मवस्तु को जानकर उसमें अपनापन स्थापित कर; उसी में जम जाना, रम जाना चाहिए।

आचार्य अमृतचन्द्र ने आत्मख्याति के परिशिष्ट के आरंभ में ही यह प्रतिज्ञा की थी कि अब स्याद्वाद की शुद्धि के लिए वस्तुतत्त्व की व्यवस्था और उपाय-उपेय भाव पर भी थोड़ा-बहुत विचार करते हैं।

२४७ वें कलश में समागत उक्त कथन का तो यही अर्थ अभीष्ट है कि वे स्याद्वाद की शुद्धि के लिए वस्तुतत्त्व की व्यवस्था और उपाय-उपेयभाव की चर्चा करना चाहते हैं।

उक्त कथन के आधार पर तो उसमें समागत दो अधिकारों के नाम वस्तुतत्त्वव्यवस्था अधिकार और उपायोपेयाधिकार होना चाहिए; क्योंकि स्याद्वाद की स्थापना तो वे दोनों अधिकारों में ही करते देखे जाते हैं; तथापि कलश टीकाकार और नाटक समयसारकार ने इन अधिकारों के नाम स्याद्वादधिकार और उपायोपेयाधिकार दे दिये। इसकारण पहले अधिकार का नाम स्याद्वाद अधिकार ही प्रचलित हो गया।

आखिर, क्यों पढ़े समयसार

विश्व के समस्त दर्शनों में जैनदर्शन ही एक ऐसा दर्शन है, जो कहता है कि प्रत्येक आत्मा स्वयं भगवान है। स्वभाव से तो सभी आत्मा भगवान हैं ही; किन्तु यदि स्वयं को जाने, पहिचाने और स्वयं में ही जम जाये, रम जाये तो पर्याय में भी भगवान बन सकता है।

यह समयसार परमागम आत्मा से परमात्मा बनने की विधि बतानेवाला अद्भुत शास्त्र है। इसमें उस शुद्धात्मा का स्वरूप बताया गया है कि जिसके जानने का नाम सम्यग्ज्ञान, पहिचानने और अपनापन स्थापित करने का नाम सम्यग्दर्शन तथा जिसमें जम जाने, रम जाने, समा जाने का नाम सम्यक्चारित्र है। ये सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र ही भगवान बनने की विधि है।

वह भगवान आत्मा वर्णादि और रागादिभावों से भिन्न, अनंत गुणों का अखंड पिण्ड, असंख्यात-प्रदेशी, ज्ञानानन्दस्वभावी परमतत्त्व है।

वर्णादि में शरीर, स्त्री, पुत्र, मकानादि सभी संयोग आ जाते हैं और रागादि से आत्मा में उत्पन्न होने वाले सभी संयोगी भाव (राग-द्वेषादि विकारी भाव) आ जाते हैं।

उक्त भगवान आत्मा इन शरीरादि वर्णादि भावों में और रागादि विकारी भावों से पूर्णतः भिन्न है; न वह इन रूप है, न इनका स्वामी है, न इनका कर्ता है, न इनका भोक्ता है। ये पदार्थ भी न आत्मा रूप हैं, न आत्मा के स्वामी हैं, न आत्मा इनका कर्ता-भोक्ता है। यह जानना ही सम्यग्ज्ञान है और इनसे भिन्न उक्त आत्मा में अपनापन होना ही सम्यग्दर्शन है तथा इसी में जम जाना सम्यक्चारित्र है।

वह शुद्धात्मा और कोई नहीं है, मैं स्वयं ही हूँ, प्रत्येक जीव के लिए वह स्वयं ही है। इसप्रकार स्वयं को जानना-पहचानना और उसमें जमना-रमना धर्म है, इन सब बातों के लिए उक्त आत्मा का स्वरूप जानना अत्यन्त आवश्यक है और इसके लिए समयसार का अध्ययन किया जाना परमावश्यक है।

इसके अतिरिक्त धर्म के नाम पर चलनेवाले सभी प्रकार के शुभभाव और क्रियाकारकों को यद्यपि व्यवहार से धर्म कहा जाता है, तथापि वे वास्तविक धर्म नहीं हैं; क्योंकि वे कर्मबंध के कारण हैं, उनसे लौकिक-अनुकूलताएँ तो प्राप्त हो सकती हैं; परन्तु उससे वास्तविक सुख-शान्ति प्राप्त होना संभव नहीं है।

इसप्रकार सच्ची सुख-शान्ति प्राप्त करने का मार्ग बतानेवाला यही एकमात्र महाशास्त्र है।

इसलिए सच्चे सुख एवं परमशान्ति की तलाश करनेवाले सभी जीवों को इस ग्रन्थ का स्वाध्याय अवश्य करना चाहिए।